॥ श्रीहरिः ॥

331▲

सुखी बननेके उपाय

हनुमानप्रसाद पोद्दार

331

॥ श्रीहरिः ॥

सुखी बननेके उपाय

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके लेखोंका एक और सुन्दर संग्रह आपकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए हम प्रसन्नताका अनुभव कर रहे हैं। ये लेख समय-समयपर 'कल्याण' में प्रकाशित हुए हैं। इन लेखोंमें आध्यात्मिक साधन-सम्बन्धी अतिशय उपादेय ठोस सामग्रीका समावेश हुआ है।

व्यक्तिके जीवनका प्रभाव सर्वोपरि होता है। श्रीभाईजी अध्यात्म-साधनकी उस परमोच्च स्थितिमें पहुँच गये थे, जहाँ पहुँचे हुए व्यक्तिके जीवनसे, वाणीसे, लेखनीसे परमार्थके साधकोंको ही नहीं, मनुष्यमात्रको अमोघ लाभ मिलता है। हमारा विश्वास है कि जो व्यक्ति इन लेखोंको मननपूर्वक पढ़ेंगे एवं अपने जीवनमें उन बातोंको उतारनेका प्रयत्न करेंगे, उनको निश्चय ही विशेष सफलता प्राप्त होगी।

—**प्रकाशक**

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

सुखी बननेके उपाय

धर्मके विविध रूप

जो सबका धारण करे और जिससे अभ्युदय तथा निःश्रेयस्की सिद्धि हो वह धर्म है। सब लोग एक परिस्थितिमें नहीं रहते। एक ही व्यक्ति सदा एक-सी परिस्थितिमें नहीं रहता। पूरे समाज एवं देशमें भी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। मनुष्योंकी रुचि, अधिकार तथा मानसिक योग्यता भी एक-जैसी नहीं है। इसलिये कोई एक ही धर्मका निश्चित रूप, कोई एक ही साधन-सम्प्रदाय, कोई एक ही आचार-पद्धति सब देशों, सब लोगों और सब समयके लिये अभ्युदय-निःश्रेयस् सिद्धिका कारण हो सके, यह सम्भव नहीं है। इसलिये धर्म नानारूपात्मक है। वह एक होकर भी अनेकरूप है। अनेकतामें एकत्वका दर्शन—यही सृष्टिके परम तत्त्वका दर्शन है।

जब एक साधन-प्रणाली, एक ही आचारसंहिता, एक ही जीवन-पद्धति अथवा उपासना-पद्धतिका आग्रह किया जाता है, तब वह बहुत शीघ्र विकृत होने लगती है। उसकी पद्धतियोंमें उसके अनुयायी छूट लेने लगते हैं और उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। आज करोड़ों वर्ष व्यतीत होनेपर भी सनातन धर्म केवल जीवित ही नहीं है, समस्त विकृतियों तथा बाह्य आघातोंके निरन्तर थपेड़े सहनेपर भी उसमें अपने अधिकारानुरूप धर्मका आचरण करनेवालोंकी एक बड़ी संख्या है, जब कि विश्वमें एक ग्रन्थ, एक गुरु, एक उपासना-पद्धतिको ही धर्म माननेवाले अनेक सम्प्रदाय जनमे और नष्ट हो गये। जो आज जीवित हैं, उन अपनेको धर्म कहनेवाले सम्प्रदायोंमें उनके अनुयायियोंकी दृढ़तासे नियम पालन करनेवालोंका अनुपात सनातन धर्मकी अपेक्षा बहुत कम रह गया है।

धर्म सार्वभौम है, सबके लिये है तो उसका समयानुकूल तथा

शुद्ध आचार चाहिये प्रतिदिन! आप शुद्ध आहार नहीं देंगे तो वह मनमाना आहार ग्रहण कर लेगा और तब बीमार हो जायगा। उसमें मानसिक रोग जड़ पकड़ लेंगे।

स्नान, संध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव आदि कर्म नित्यकर्म हैं द्विजातिके लिये। इनमें भी संध्यादिकी पद्धति भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक सम्प्रदायने अपने अनुयायियोंके लिये नित्यकर्म निश्चित किये हैं। प्रातःकाल उठकर प्रार्थना करनेसे लेकर शयन करनेतकके लिये नित्यकर्म है। आप संध्या करते हैं या नमाज पढ़ते हैं, इसमें तात्पर्य नहीं है। तात्पर्य इसमें है कि आपके सम्प्रदायके अनुसार जो आपका नित्यकर्म है, उसका पालन आपको नियमपूर्वक करना चाहिये। यह मनकी स्वच्छता, स्वस्थता तथा सशक्तताके लिये आवश्यक है।

नैमित्तिक कर्म—मनुष्यके जीवनमें बहुत-से निमित्त आते हैं, जब उसे अपनी दैनिक चर्यामें परिवर्तन करना पड़ता है। उस समय उसे उस निमित्त-विशेषको दृष्टिमें रखकर कार्यक्रम बनाना पड़ता है। धार्मिक दृष्टिसे जब ऐसे विशेष निमित्त आते हैं, तब विशेष धार्मिक कर्म आवश्यक होते हैं।

घरमें संतान होती है, विवाह पड़ता है, कोई विशेष अतिथि आता है, कोई मरता है। ऐसे समय आप अपने कार्यालय, दूकान आदिके सामान्य काममें अन्तर करते हैं या नहीं? इन अवसरोंपर आपके चित्तमें विशेष उत्साह, शोक या चांचल्य होता है। अतएव चित्तके परिष्कारके लिये भी इन अवसरोंपर विशेष आचरण होना चाहिये।

निमित्त स्थानके कारण आते हैं—जैसे आप तीर्थयात्रा करें तो तीर्थ-स्थान विशेष निमित्त हैं। काल निमित्त बनता है—जैसे एकादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, शिवरात्रि आदि। जब प्रकृति विशेष अवस्थामें होती है, व्यक्ति अथवा घटनाएँ निमित्त बनती हैं। इन निमित्तोंके अनुसार हमारा जीवन, हमारा मन अभ्युदय एवं निःश्रेयस्के पथपर ठीक स्थिर रहे, वेगसे बढ़े, इसके जो विधान हैं, वे नैमित्तिक कर्म हैं।

यात्रामें आँधी वेगकी हो और प्रतिकूल हो तो नौका घाटपर लाकर

साधककी परिस्थिति एवं अधिकारके अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप भी होगा। इसलिये प्रत्येक युगके विशेष-विशेष धर्म हैं। प्रत्येक वर्ण एवं आश्रमके भिन्न-भिन्न धर्म हैं। प्रत्येकके अधिकारके अनुसार भिन्न-भिन्न धर्म हैं। धर्मके इन विविध रूपोंका नामोल्लेख करनातक सम्भव नहीं है।

इन असंख्य विविधताओंके होते हुए भी बहुत-सी मौलिक एकताएँ होती हैं। जैसे मनुष्योंके रंग तथा आकृतियाँ, उनके कद, उनका वजन भिन्न-भिन्न होनेपर भी उनकी आकृतिमें समानता है, जिसके कारण सब मनुष्य कहलाते हैं। उसी प्रकार सभी मनुष्योंके पृथक्-पृथक् आचरणोंमें भी एक समानता होती है। सबके अभ्युदय-निःश्रेयस्के साधनोंमें जो समत्व है, उसे दृष्टिमें रखकर सबके लिये धर्मके—कर्तव्य कर्मके जो मुख्य-मुख्य भेद हैं, उनकी ही चर्चा यहाँ की जा रही है।

नित्य-कर्म—यह सबसे मुख्य अंग है धर्मकृत्यका। कहा गया है कि नित्यकर्मके करनेसे कोई पुण्य नहीं होता, न करनेसे पाप होता है। जैसे स्नान करना है। सामान्य स्नान करनेसे शरीरको कोई नयी शक्ति मिलती ही है, यह कहा नहीं जा सकता, किंतु स्नान न करनेसे शरीर मलावृत रहता है और रोगकी ओर जाता है। इसी प्रकार नित्यकर्मका अर्थ है प्राकृतिक एवं शास्त्रीय रीतिसे दैनिक मानसिक स्वच्छताका कार्य।

प्रकृति स्वभावसे विकारोन्मुख है। कोई भी भवन बनाइये, बंद रखिये, किंतु उसमें थोड़ी-बहुत धूलि-गंदगी एकत्र होती ही है। दैनिक स्वच्छता भवनके लिये, तनके लिये जैसे अपेक्षित है, वैसे ही मनके लिये भी अपेक्षित है। मनको भी सूक्ष्म शरीरका अंग माना गया है। वह भी प्राकृतिक तत्त्व है। अतः मन कोई ऐसा कभी नहीं बनेगा कि उसकी स्वच्छताका प्रयास बंद कर दिया जाय तो वह स्वच्छ बना रहेगा। यह प्रयास तो करते ही रहना होगा।

केवल स्वच्छताका प्रयास ही नहीं, दैनिक रूपसे पोषण भी आवश्यक है। आप कार्य न करें, चुपचाप पड़े रहें तो भी हृदय काम करता है। रक्त दौड़ता है। अतः शरीरको अपनी शक्ति बनाये रखनेके लिये दैनिक भोजन आवश्यक होता है। इसी प्रकार मनको भी सशक्त रखनेके लिये

रोक देनी पड़ती है। वायुका वेग अनुकूल हो तो पाल चढ़ा देना पड़ता है। इसी प्रकार नैमित्तिक कर्मके विधान प्रतिकूल निमित्तकी बाधासे रक्षा तथा अनुकूल निमित्तकी शक्तिसे अधिकाधिक लाभ उठानेके लिये निश्चित हुए हैं।

सामान्य धर्म—सबके लिये साधारणरूपसे व्यवहार करनेके कुछ नियम होते हैं। जैसे भारतमें सामान्य नियम है कि मार्गपर अपने बायें हाथकी ओरसे सवारी चलायी जाय। इसी प्रकार सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सेवा, संतोष, मन-इन्द्रियसंयम, ईश्वरमें श्रद्धा आदि सामान्य धर्म हैं। इनका आचरण सबको ही करना चाहिये। ये सबके लिये आचरणीय एवं नित्य मंगलमय हैं। श्रीमद्भागवतमें युधिष्ठिरजीको देवर्षि नारदने धर्मोपदेश करते हुए तीस लक्षणयुक्त सार्ववर्णिक, सार्वभौम मानवधर्म बताया है—

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥

(श्रीमद्भा० ७।११।८—१२)

१-सत्य, २-दया, ३-तपस्या, ४-पवित्रता, ५-कष्टसहिष्णुता, ६-उचित-अनुचितका विचार, ७-मनका संयम, ८-इन्द्रियोंका संयम, ९-अहिंसा, १०-ब्रह्मचर्य, ११-त्याग, १२-स्वाध्याय, १३-सरलता, १४-संतोष, १५-समदर्शिता, १६-सेवा, १७-धीरे-धीरे सांसारिक भोगवृत्तिका

त्याग, १८-मनुष्यके लौकिक सुखप्राप्तिके प्रयत्न उलटा ही फल देते हैं—यह विचार, १९-मौन, २०-आत्मचिन्तन, २१-प्राणियोंमें अन्नादिका यथायोग्य विभाजन तथा उनमें, विशेषकर मनुष्योंमें अपने आराध्यको देखना, २२-महापुरुषोंकी परमगति भगवान्‌के रूप, गुण, लीला, माहात्म्यका श्रवण, २३-भगवन्नाम-गुण-लीलाका कीर्तन, २४-भगवान्‌का स्मरण, २५-२६-भगवत्सेवा तथा पूजा-यज्ञादि, २७-भगवान्‌को नमस्कार करना, २८-भगवान्‌के प्रति दास्यभाव, २९-सख्यभाव और ३०-भगवान्‌को आत्मसमर्पण—इन तीस लक्षणोंवाला धर्म सभी मनुष्योंके लिये कहा गया है। इसके पालनसे सर्वात्मा भगवान् संतुष्ट होते हैं।

विशेष धर्म—मनुष्य होनेके साथ प्रत्येक मनुष्यकी एक विशेष परिस्थिति भी समाजमें है और उस परिस्थितिके अनुसार उसके विशेष कर्तव्य भी होते हैं। आप देशके सामान्य नागरिक हैं, इसलिये नागरिकताके सामान्य कर्तव्यका पालन तो आपको करना ही है। इसके साथ ही आप किसीके पिता, किसीके पुत्र, किसीके पति, किसीके भाई भी हैं। समाजमें आपके दूसरे सैकड़ों सम्बन्ध हैं और उन सम्बन्धोंके अनुसार विभिन्न कर्तव्य, विभिन्न दायित्व आपके हैं। उनका निर्वाह भी आपको करना है।

यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसीका आदर्श है। उसके पुत्र, मित्र, सेवक उसका अनुकरण करते हैं। इसलिये हमारा अपना आचरण केवल हमको ही प्रभावित नहीं करता। उसका हमारे समीपस्थों-आश्रितोंपर भी प्रभाव पड़ता है। हम अनेकों दूसरोंके अभ्युत्थान या पतनका भी निमित्त अपने आचरणसे बनते हैं। इसलिये हमें अपने कर्तव्य-निर्वाहके प्रति बहुत सतर्क रहनेकी आवश्यकता है।

मनुष्यकी जो समाज, परिवार, राष्ट्रमें विशेष-विशेष स्थिति है, उसके कारण उसके विशेष-विशेष धर्म बन जाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रका धर्म अपने-अपने वर्णोंके अनुसार। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासीका धर्म अपने-अपने आश्रमके अनुसार। पुरुष, स्त्रीका धर्म अपने शरीरके अनुसार। बालक, युवा, वृद्धका धर्म शरीरकी अवस्थाके

अनुसार। माता, पिता, पुत्र, भाई, बहिन, मित्र, गुरु, शिष्य आदिके धर्म अपने सम्बन्ध एवं स्थितिके अनुसार होते हैं।

सैनिकका धर्म एक और प्रशासकका दूसरा। न्यायाधीशका धर्म भिन्न और वकील या व्यापारीका भिन्न। इस प्रकार समाजमें आपकी जो परिस्थिति है, जहाँ, जिस समय, जिस रूपमें, जिस पदपर आप हैं, उसके अनुसार आपका विशेष धर्म निश्चित होता है। एक ही व्यक्तिका धर्म पत्नीके प्रति भिन्न है, पुत्रीके प्रति भिन्न और माताके प्रति भिन्न है।

काम्यकर्म या धर्म—जबतक हम कुछ नहीं चाहते, जीवन अपनी सामान्य गतिसे चलता रहता है। लेकिन जब हम कुछ पदार्थ-विशेष या परिस्थिति-विशेष प्राप्त करना चाहते हैं, हमको विशेष उद्योग करना पड़ता है और हमारी सफलता उद्योगके सर्वथा ठीक-ठीक होनेपर निर्भर करती है। उद्योगमें त्रुटि होनेपर उद्योग अपूर्ण सफल होगा, असफल होगा या विपरीत फल देगा—कुछ कहा नहीं जा सकता।

काम्यकर्म अनिवार्य नहीं हैं। उनके न करनेसे कोई दोष, कोई पाप नहीं होता। जैसे वार-व्रत हैं। सब वार-व्रत किसी-न-किसी कामनासे किये जाते हैं। अतः कोई रविवार, मंगल या किसी अन्य वारका व्रत नहीं करता, यह कोई दोष नहीं है। उस वार-व्रतका जो लाभ है, उस लाभको प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो व्रत कीजिये। काम्यकर्म करनेसे अपना लाभ होता है।

इसमें यह स्मरण रखना चाहिये कि काम्यकर्ममें श्रद्धा तथा विधिका सम्यक् पालन आवश्यक है। 'हम विधि नहीं जानते थे। अमुक भूल अनजानमें हो गयी।' इसकी छूट काम्यकर्म—सकाम धर्मानुष्ठानमें नहीं है। जैसे रोग हुआ या मकान बनवाना है तो दवाकी ठीक जानकारी, ठीक उपयोग, मकानके बनानेका पूरा कौशल जानना अनिवार्य है। बिना जाने या प्रमादसे त्रुटि होगी तो वह अपना फल दिखायेगी। इसी प्रकार सकाम धर्मानुष्ठानमें विधि न जानने या भूल-प्रमादवश त्रुटि होगी तो भी आपका श्रम व्यर्थ जा सकता है या वह उलटा फल भी दिखा सकता है।

आपद्धर्म—मनुष्य सदा सामान्य परिस्थितिमें नहीं रहता। रोग, शोक,

विपत्ति आदि आती ही रहती हैं। अतः शास्त्रने ऐसी परिस्थितिमें निर्वाहका विधान किया है। उस समय नित्य अथवा विशेष धर्ममें कुछ छूट दी गयी है, किंतु उतनी ही छूट, जिसके बिना जीवनधारण सम्भव न हो।

एक बार अकाल पड़ा। एक ऋषि भूखसे मरणासन्न थे। प्राणरक्षाके लिये उन्होंने शूद्रसे उसके उच्छिष्ट उबाले उड़द लिये। शूद्रने जल देना चाहा तो ऋषिने कहा—'तुम्हारा उच्छिष्ट जल लेनेसे मैं धर्मभ्रष्ट हो जाऊँगा। जल मुझे अन्यत्र भी मिल सकता है। प्राणरक्षाके लिये मैंने उड़द लिये कि प्राण रखकर धर्म-पालन तथा आराधना करूँगा।'

यह दृष्टान्त आपद्धर्मकी मर्यादाको बहुत स्पष्ट करता है। किंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि आपद्धर्म धर्म नहीं है। अत्यन्त विवशतामें केवल प्राणरक्षाके लिये धर्ममें किंचित् शिथिलताकी वह छूट है। उस समय वह शिथिलता स्वीकार करनेमें दोष नहीं है, किंतु आपद्धर्म न स्वीकार करके विपत्तिमें, प्राण-संकटमें भी धर्मपर पूर्णतः स्थिर रहना विशेष प्रशस्त—महान् पुण्यप्रद माना गया है।

श्रीभगवत्पूजन-पद्धतिका सामान्य परिचय

अष्ट-काल

निशान्तः प्रातः पूर्वाह्णो मध्याह्नश्चापराह्णकः।
सायं प्रदोषो नक्तं चेत्यष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः॥

निशान्त (सूर्योदयसे पूर्व दो घंटे चौबीस मिनटका काल), प्रातः (सूर्योदयके उपरान्त दो घंटे चौबीस मिनटतक), पूर्वाह्ण (तत्पश्चात् दो घंटे चौबीस मिनट), मध्याह्न (तत्पश्चात् चार घंटे अड़तालीस मिनट), अपराह्ण (तत्पश्चात् सूर्यास्ततक दो घंटे चौबीस मिनट), सायाह्न (सूर्यास्तके बाद दो घंटे चौबीस मिनट), प्रदोष (तत्पश्चात् दो घंटे चौबीस मिनट), निशा (उसके बाद चार घंटे अड़तालीस मिनट)—इन रात-दिनके आठ भागोंमें अष्टकालीन पूजा होती है। श्रीभगवत्पूजा प्रतिमामें, चित्रपटमें या मानसिक की जाती है। पूजा पूर्व या उत्तर मुँह बैठकर करनी चाहिये।

प्रातः-स्नान

सूर्योदयके पश्चात् प्रायः ढाई घंटेतक प्रातःकालका समय होता है। शौचादिसे निवृत्त होकर हस्त-पादादि-शुद्धिपूर्वक दन्तधावन करके आचमन कर प्रतिदिन यत्नपूर्वक प्रातः-स्नान करे। 'श्रीहरि-भक्ति-विलास' में लिखा है कि ब्राह्ममुहूर्तमें 'कृष्ण, कृष्ण' कीर्तन करते हुए उठे, फिर शौचादिसे निवृत्त हो हाथ-मुँह आदि धोकर दन्तधावन करे, पश्चात् आचमन करके कपड़े बदलकर प्रातःकालीन स्मरण, कीर्तन और ध्यान करके प्रभुको जगाकर, निर्माल्य आदि उतारकर, श्रीमुखप्रक्षालन कराके, मंगल-आरती आदिका कार्य सम्पादन करके अरुणोदयका समय व्यतीत होनेपर प्रातः-स्नानके लिये बाहर निकले तथा कृष्ण-नाम-कीर्तन करते हुए जलमय तीर्थमें या उसके अभावमें विशुद्ध जलाशयमें जाकर विधिपूर्वक स्नान करे।

पुष्प-चयन-विधि

रात्रिके वस्त्र परित्याग करके पवित्र वस्त्र धारण कर अथवा प्रातःस्नान करके पुष्प-चयन करे। मध्याह्नकालमें स्नान करके पुष्प-चयन करना वर्जित है।

तुलसी-चयन-विधि

बिना स्नान किये तुलसी-चयन न करे। चयन करनेका मन्त्र—

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने॥
त्वदंगसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्रांगि कलौ मलविनाशिनि॥
चयनोद्भवदुःखं ते यद्देवि हृदि वर्तते।
तत् क्षमस्व जगन्मातस्तुलसि त्वां नमाम्यहम्॥

यह मन्त्र उच्चारण करके श्रीतुलसीदेवीको नमस्कार कर दाहिने हाथसे धीरे-धीरे वृन्तके साथ एक-एक पत्र अथवा द्विदलके साथ मंजरी-चयन करके पवित्र पात्रमें रखे। कीड़ोंका खाया हुआ अथवा छिन्न पत्र ग्रहण न करे। अखण्डपत्र ही प्रशस्त होता है। 'इस मन्त्रसे तुलसी-चयन करके श्रीकृष्ण-पूजा करनेसे लक्ष-कोटिगुना फल प्राप्त होता है'—

मन्त्रेणानेन यः कुर्याद् गृहीत्वा तुलसीदलम्।
पूजनं वासुदेवस्य लक्षकोटिफलं लभेत्॥

(श्रीहरि-भक्ति-विलास)

(श्रीशिव-पूजार्थ)

बिल्वपत्र-चयन-विधि

बिल्वकी बड़ी महिमा है। लिखा है कि सहस्रों कमलोंके द्वारा भगवान् शिवजीकी पूजा करनेसे जो फल होता है, वही बिल्वपत्रद्वारा

करनेसे होता है। तुलसीपत्रकी भाँति ही बिल्वपत्र तोड़ते समय नीचे लिखे मन्त्रका उच्चारण करे—

पुण्यवृक्ष महाभाग मालूर श्रीफल प्रभो।
महेशपूजनार्थाय त्वत्पत्राणि चिनोम्यहम्॥

पत्र तोड़नेके पश्चात् नीचे लिखा मन्त्र बोलकर बिल्ववृक्षको प्रणाम करना चाहिये—

ॐ नमो बिल्वतरवे सदा शंकररूपिणे।
सफलानि ममांगानि कुरुष्व शिवहर्षद॥

बिल्वपत्र छः महीनेतक बासी नहीं माना जाता। पूजामें इसको उलटा चढ़ाना चाहिये।

पूजाके उपकरण

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमस्नानवसनाभरणानि च॥
गन्धः सुमनसो धूपो दीपो नैवेद्यवन्दने।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश॥

(तन्त्रसार, मत्स्यसूक्त)

'आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और स्तुति-पाठ—ये पूजाके षोडशोपचार हैं।'

पाद्यमर्घ्यं तथाचामो मधुपर्काचमस्तथा।
गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात्॥

'पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, पुनः आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य—ये दशोपचार हैं।'

गन्धादिभिर्नैवेद्यान्तैः पूजा पंचोपचारिका।
सपर्यास्त्रिविधाः प्रोक्तास्तासामेकां समाचरेत्॥

'गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य—ये पूजाके पंचोपचार हैं। यह तीन प्रकारकी पूजा कही गयी है। इनमेंसे एकका सम्यक् अनुष्ठान करना चाहिये।'

अष्टांग अर्घ्य

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा।
यवाः सिद्धार्थकाश्चैवमर्घ्योऽष्टांगः प्रकीर्तितः॥

(भविष्यपुराण)

'अर्घ्य-पात्रमें जल, दुग्ध, कुशाग्र, दधि, अक्षत, तिल, यव और श्वेत सर्षप—इन आठ द्रव्योंका निक्षेप करके व्यवहार करे।'

मधुपर्क

मधुपर्कके पात्रमें घृत, दधि और मधु—इन तीन द्रव्योंकी व्यवस्था करे। मधुके अभावमें गुड़ तथा दधिके अभावमें दुग्धका प्रयोग करे। मधुपर्कको कांस्य-पात्रसे ढकनेका विधान है। जैसे—

मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं कांस्येनेति।

(कात्यायनसूत्र)

पूजार्थ जल-ग्रहण

याज्ञवल्क्य-संहितामें लिखा है—

'न नक्तोदकपुष्पाद्यैरर्चनं स्नानमर्हति।

'रात्रिमें जो जल या पुष्पादि आहरण किया जाय, उससे श्रीहरिका स्नान-पूजन सम्पन्न न करे।' विष्णुस्मृतिमें भी लिखा है—'**न नक्तं गृहीतोदकेन देवकर्म कुर्यात्।**' अर्थात् रात्रिकालमें संगृहीत जलसे देवकर्म न करे।

जल-शुद्धि

पवित्र गंगा, यमुना, राधा-कुण्ड आदि तीर्थोंके जलके सिवा अन्य जल हो तो—

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

—इस मन्त्रके द्वारा जलके ऊपर अंकुश-मुद्रा दिखाकर तीर्थोंका आवाहन करे।

पूजोपकरण-स्थापन-प्रणाली

(१) *स्नानीय जल*—श्रीभगवान्‌के सामने दक्षिणकी ओर स्थापित करे।

(२) *स्नान-पात्र और आचमन-पात्र*—उसके निकट रखे।

(३) *शंख*—अपने सामने वामभागमें आधारपर स्थापित करे।

(४) *घण्टा*—उसके समीप किसी आधारपर रखे।

(५) *नैवेद्य और धूप*—अपने वाम पार्श्वमें।

(६) *तुलसी और गन्ध-पुष्पादिके पात्र*—अपने दक्षिणपार्श्वमें।

(७) *घृत-दीप*—तुलसी आदिके समीप, परंतु तैल-दीप होनेपर अपने वामपार्श्वमें स्थापन करे।

(८) *पूजाके अन्यान्य द्रव्यादि*—अपने सामने जहाँ सुविधा हो, वहाँ रखे।

(९) *हस्त-प्रक्षालन-पात्र*—अपने पृष्ठ-देशमें रखे।

घण्टा-स्थापन-विधि

'क्लीं' बीजका उच्चारण करके अपने वामपार्श्वमें आधारके ऊपर घण्टा रखकर **'ॐ जगद्ध्वनित भो मन्त्रमातः स्वाहा'**—यह मन्त्र पढ़कर **'एतत् पाद्यम्, इदमाचमनीयम्, एते गन्धपुष्पे, घण्टायै नमः'**—मन्त्र पढ़कर पाद्य आदिके द्वारा घण्टाकी पूजा करे, पश्चात् वामहस्तद्वारा घण्टा बजाते हुए बोले—

सर्ववाद्यमयी घण्टा देवदेवस्य वल्लभा।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन घण्टानादं तु कारयेत्॥

देवताके आवाहन-कार्यमें तथा अर्घ्य, धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य अर्पण करते तथा स्नान कराते समय घण्टा-वादन अवश्य करना चाहिये।

दिग्बन्धन

ॐ शार्ङ्गाय सशराय हुँ फट् नमः—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए पुष्प और धानका लावा (लाज) चारों ओर छींट करके दिग्बन्धन करना पड़ता है।

विघ्न-निवारण

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

—इस मन्त्रको पढ़कर,'**अस्त्राय फट्**'—इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करते हुए तीन बार वामपादकी एड़ीसे भूमिपर आघात करके विघ्न दूर करे, फिर पूजा प्रारम्भ करे।

पूजाके लिये आसन

नारद-पांचरात्रमें लिखा है—

वंशादाहुर्दरिद्रत्वं पाषाणे व्याधिसम्भवम्।
धरण्यां दुःखसम्भूतिं दौर्भाग्यं दारुवासने॥
तृणासने यशोहानिं पल्लवे चित्तविभ्रमम्।
दर्भासने व्याधिनाशं कम्बले दुःखमोचनम्॥

'बाँसके आसनपर बैठनेसे दरिद्रता, पाषाणपर रोगोत्पत्ति, पृथ्वीपर दुःख, काष्ठके आसनपर दौर्भाग्य, तृणके आसनपर यशकी हानि, पल्लवपर चित्तका विभ्रम, कुशासनपर रोगनाश तथा कम्बलके आसनपर बैठनेपर दुःख-मोचन होता है।'

आसन-शुद्धि

पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

—इस मन्त्रसे जल-सिंचन करके आसन-शुद्धि करे।

उपवेशन-विधि

भक्तिमार्गमें आसनका कोई विशेष नियम नहीं है। परंतु स्वस्तिकासनसे बैठना ही सर्वापेक्षा सुखप्रद होता है। पिंडली और ऊरुदेश (जाँघ)-के मध्यमें दोनों पद-तलोंको स्थापित करके सीधे बैठनेका नाम स्वस्तिकासन है। दिनमें प्रायः पूर्वमुख और रात्रिमें उत्तरमुख होकर बैठना चाहिये। परंतु श्रीमूर्ति साक्षात् हो तो उसके सम्मुख होकर बैठना चाहिये।

यथा—

तत्र कृष्णार्चकः प्रायो दिवसे प्राङ्मुखो भवेत्।
उदङ्मुखो रजन्यां तु स्थिरमूर्तिश्च सम्मुखः॥

(श्रीहरि-भक्ति-विलास)

तिलक-धारण-विधि

श्रीराधाकुण्डकी रज या गोपीचन्दन आदि पवित्र मृत्तिकाद्वारा तिलक किया जाता है। ललाट आदिमें तिलक करते समय '**ॐ केशवाय नमः**'— मन्त्र बोलना चाहिये।

आचमन-विधि

हाथ-पैर धोकर आसनपर बैठे, तत्पश्चात् दाहिनी हथेलीमें तनिक जल लेकर—

ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः। ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयो दिवीव चक्षुराततम्॥—

यह मन्त्र पढ़कर तीन बार आचमन करे। यह जल इतना होना चाहिये कि जो ब्राह्मणके हृदयतक, क्षत्रियके कण्ठतक, वैश्यके तालुपर्यन्त तथा स्त्री और शूद्रके मुखमात्रका स्पर्श कर सके। तत्पश्चात्—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

यह मन्त्र पढ़कर सिरपर जलका छींटा दे।

पाद्यादि-अर्पणके नियम

श्रीमूर्तौ तु शिरस्यर्घ्यं दद्यात् पाद्यं च पादयोः।
मुखे चाचमनीयं त्रिर्मधुपर्कं च तत्र हि॥

श्रीविग्रहके मस्तकपर अर्घ्य तथा दोनों चरणोंपर पाद्य अर्पण करना चाहिये। आचमनीय—तीन बार—और मधुपर्क श्रीमुखमें प्रदान करने चाहिये।

श्रीभगवत्स्नान-विधि

श्रीहरि-भक्ति-विलासमें लिखा है कि प्रभुके निकट '**भगवन्! स्नानभूमिमलंकुरु**' यह प्रार्थना करके '**पादुके निवेदयामि नमः**' कहकर प्रभुके सामने पादुका-युगल प्रदान करे, पश्चात् स्तोत्र और गीत-वाद्यादिके साथ उनको श्रीमन्दिरके अभ्यन्तर ईशान-कोणमें निर्मित स्नान-वेदीपर ले जाकर स्नानार्थ ताम्रपात्रमें स्थापित करे। तत्पश्चात् शंख-जलसे भगवान्‌को स्नान कराये।

स्नान-विधि

इस मन्त्रसे पहले शंखमें जल ले—

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
मानितः सर्वदेवैश्च पांचजन्य नमोऽस्तु ते॥

'हे पांचजन्य! तुम प्राचीन कालमें समुद्रसे उत्पन्न हुए थे, विष्णु-भगवान्‌ने तुम्हें हाथमें धारण किया तथा तुम सब देवोंके मान्य हो, तुम्हें नमस्कार है।'

पंचामृतसे श्रीभगवदभिषेक

श्रीहरि-भक्ति-विलासमें लिखा है कि पंचामृतमें स्नान कराना हो तो दुग्ध, दधि, घृत, मधु और चीनी—एक-एकको क्रमशः शंखमें लेकर पृथक्-पृथक् स्नान कराये।

चन्दन घिसनेका नियम

श्वेत चन्दन ही श्रीभगवदर्चनामें व्यवहृत होता है। दोनों हाथसे चन्दनकी लकड़ी पकड़कर तर्जनी अंगुलिका स्पर्श न कराते हुए दक्षिण हाथकी ओरसे घुमाकर चन्दन-घर्षण करना चाहिये।

गन्ध-अर्पण-विधि

अँगूठे और कनिष्ठा अंगुलिके द्वारा चन्दन आदि गन्धद्रव्योंको अर्पण करे।

पुष्प-शुद्धि

पुष्पोंको लेकर—

ॐ पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे।
पुष्पचयावकीर्णे च हुँ फट् स्वाहा॥

यह मन्त्र उच्चारण करते हुए उनके ऊपर जल-सिंचन करके उसमें चन्दन तथा अन्य गन्ध-द्रव्य निक्षेप करे।

पत्र-पुष्प आदिके अर्पणकी विधि

पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम्।
दुःखदं तत् समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम्॥

'पत्र-पुष्प अथवा फल कभी भगवान्‌को अधोमुख करके अर्पण नहीं करना चाहिये। यह भगवान्‌को प्रीतिकर नहीं होता, अपितु क्लेशदायक होता है। अतएव ये प्रकृतितः जैसे उत्पन्न होते हैं, उसी रूपमें अर्पण करे।' विहित और सुसंस्कृत वृन्तसहित पुष्पको चन्दन-लिप्त करके अंगुष्ठ और मध्यमा अंगुलिके द्वारा वृन्तकी ओर धारण करके अर्पण करना चाहिये।

तुलसी-अर्पण-विधि

तुलसीदलको भलीभाँति धोकर जलशून्य करके चन्दन लगाकर अनामिका और अंगुष्ठसे धारण करके, उसके पृष्ठ-भागको नीचेकी ओर

कर, श्रीपाद-पद्ममें एक-एक करके अर्पण करे। तुलसी-पत्र कम-से-कम तीन बार अर्पण करे। किसी-किसीके मतसे कम-से-कम आठ बार अर्पण करना चाहिये।

धूप-अर्पण-विधि

पीतल आदि धातुकी बनी हुई धूपदानीमें काष्ठका अंगार रखकर **'एष धूपो नमः'** कहकर अंगारपर जल प्रक्षेप करते हुए गुग्गुल, अगुरु, चन्दन, घृत और मधुसे बना हुआ धूप उसपर छोड़ दे। पश्चात्—

वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

—यह मन्त्र पढ़कर **'इमं धूपं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः'** कहकर वाम हस्तसे घण्टी बजाते हुए नाम-कीर्तनके साथ प्रभुके नाभिदेशपर्यन्त धूप-पात्र उठाकर धूपार्पण करे।

दीप-अर्पण-विधि

दीपाधारमें गौका घृत अथवा असमर्थ होनेपर उत्कृष्ट तैलके साथ रूईकी बत्तीमें अथवा केवल कपूरकी बत्तीमें दीप प्रज्वलित करके दीपाधारमें तुलसीके साथ **'एष दीपो नमः'** कहकर जल प्रक्षेप करते हुए दीपोत्सर्ग करे। पश्चात्—

सुप्रकाशो महातेजाः सर्वतस्तिमिरापहः।
स बाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

—यह मन्त्रपाठ करके **'इदं दीपं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः'** बोलकर प्रभुके श्रीपाद-पद्मसे नयन-कमलपर्यन्त उज्ज्वल अलौकिक दीप घुमाकर दीपार्पण करे।

षोडशोपचार-पूजा-विधि

षोडशोपचार-पूजामें निम्नलिखित उपचार अर्पित करे—

आसन—

इदमासनं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः। श्रीकृष्ण! प्रभो इदमासनं सुखमास्यताम्॥

—यह मन्त्र पढ़कर सुमनोहर आसन अथवा उसके अभावमें पुष्प अर्पण करे।

स्वागत—निम्नलिखित मन्त्रसे स्वागत करे—

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः सर्वार्थसिद्धये।
तस्य ते परमेश्वर सुस्वागतमिदं वपुः॥

पाद्य—'**एतत् पाद्यं श्रीकृष्णाय नमः**' कहकर श्रीचरणका लक्ष्य करके पाद्य अर्पण करे।

अर्घ्य—'**इदमर्घ्यं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' कहकर श्रीमस्तकपर अर्घ्य प्रदान करे।

आचमनीय—'**इदमाचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' कहकर प्रभुके दक्षिण हाथको लक्ष्य करके आचमनार्थ किंचित् जल दे।

मधुपर्क—'**इमं मधुपर्कं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' कहकर श्रीमुखमें मधुपर्क अर्पण करे।

पुनराचमनीय—'**इदं पुनराचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' कहकर श्रीमुखमें विशुद्ध सुगन्धित जल अर्पण करे।

स्नान—इसके बाद स्नान कराये। विधि पहले दी जा चुकी है।

वसन—'**इदं परिधेयवस्त्रम्, इदमुत्तरीयवासश्च श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' यह कहकर प्रभुको मनोरम सूक्ष्म वसन और उत्तरीय वस्त्र परिधान कराये।

भूषण—'**इमानि भूषणानि श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' कहकर प्रभुको स्वर्ण-रौप्यादिनिर्मित अलंकार धारण कराये।

गन्ध—'**इमं गन्धं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' कहकर चन्दन-अगुरु-कपूर-मिश्रित गन्ध लेकर श्रीअंगमें धीरे-धीरे परम यत्नसे लेपन करे।

पुष्प—'**इमानि पुष्पाणि श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**' यह कहकर श्रीचरणोंमें तीन बार पुष्पांजलि प्रदान करे।

धूप-दीप—अर्पण करनेकी विधि पहले दी जा चुकी है।

नैवेद्य—तत्पश्चात् बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे घण्टा-नाद एवं जय-शब्दके साथ नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। नैवेद्य स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य या मिट्टीके पात्रमें अथवा कमल या पलाश-पत्रमें अर्पण करना चाहिये। नैवेद्यार्पण करते समय चक्रमुद्रा दिखलानी चाहिये। श्रेष्ठ भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य पदार्थ नैवेद्यमें अर्पण करे। बीचमें जल अर्पण करना चाहिये। कोई अभक्ष्य पदार्थ नैवेद्यमें न रखे। नैवेद्यके अन्तमें आचमन कराना चाहिये।

तत्पश्चात् ताम्बूलादि मुखवास अर्पणकर छत्र आदि धारण कराकर नीराजन करना चाहिये।

नीराजन (आरती)—मूल-मन्त्रसे घण्टा, शंख, घड़ियाल आदि नाना वाद्यों एवं जय-शब्दसे महानीराजन करना चाहिये। कपूर, घी आदिकी बत्तीसे नीराजन करे। चार बार पदतल, दो बार नाभि, एक बार मुखमण्डल तथा सात बार सभी अंगोंमें नीराजन करनेकी विधि है। इसीके साथ सजल शंखसे भी आरती करनी चाहिये। उसे तीन बार भगवान्के मस्तकपर घुमाना चाहिये। तत्पश्चात् पुनः कपूर आदिसे आरती करे। तत्पश्चात् पुष्पांजलि, स्तुति, नृत्य-गीत, प्रणामादि करने चाहिये।

वन्दना—अन्तमें अपनी रुचिके अनुसार स्तुति-पाठ करके श्रीविग्रहको दण्डवत्-प्रणाम करे।

धर्ममय भगवान् श्रीकृष्ण

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १४। २७)

भगवान् श्रीकृष्ण अविनाशी परब्रह्मकी, अमृतकी, शाश्वत-धर्मकी और ऐकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा हैं। वे स्वयं साक्षात् परब्रह्म हैं, दिव्य अमृत हैं, शाश्वत धर्म हैं और भूमा ऐकान्तिक आनन्द-स्वरूप हैं तथा इन सबके परम आश्रय भी हैं। श्रीमहाभारत, श्रीमद्भागवत एवं अन्यान्य सद्ग्रन्थोंमें इसके असंख्य प्रमाण हैं। वे स्वयं भगवान् हैं, इससे उनमें अनन्त-अचिन्त्य-अनिर्वचनीय परस्परविरोधी गुण-धर्मोंका युगपत् प्रकाश है। वे जहाँ पूर्ण भगवान् हैं, वहीं पूर्ण मानव हैं। पूर्ण भगवत्ता और पूर्ण मानवताके प्रत्यक्ष स्वरूप श्रीकृष्ण हैं। कंसके कारागारमें वे दिव्य आभाका विस्तार करते हुए आभूषण-आयुधादिसे सम्पन्न ऐश्वर्यमय चतुर्भुजरूपमें प्रकट होते हैं और तुरंत ही मधुर-मधुर छोटे-से शिशु बन जाते हैं।

व्रजमें जहाँ अपने अनुपम असमोर्ध्व रूप-माधुर्य, वेणु-माधुर्य, प्रेम-माधुर्य और लीला-माधुर्यके द्वारा व्रजवासी महाभाग नर-नारियोंको दिव्य स्वरूपरस-सुधाका पान कराते हैं और स्वयं उनके स्वसुखवांछाशून्य निर्मल सख्य, वात्सल्य और मधुर-रस-सुधाका नित्य लालायित चित्तसे पान करते रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर अवतीर्ण होनेके छठे ही दिनसे पूतनावधके द्वारा अधर्मी असुरों-राक्षसोंका परिणाम-कल्याणकारी वध करके ऐश्वर्यमयी धर्मसंस्थापन-लीलाका शुभ आरम्भ कर देते हैं।

माधुर्यजगत्‌के सखा, माता-पिता और प्रेयसियोंको अपने सखा, सुख और प्रियतम श्यामसुन्दरके ऐश्वर्यका कहीं मान भी नहीं होता और उधर तृणावर्त, वत्सासुर, वकासुर, काकासुर, धेनुकासुर, सुदर्शन, शंखचूड, अरिष्टासुर आदिका उद्धार हो जाता है तथा साथ ही मुखमें यशोदा मैयाको विश्वरूपदर्शन, यमलार्जुनभंग, कुबेरपुत्रोंका उद्धार,

कालियदमन, ब्रह्म-दर्प-दलन, गोवर्धनधारण, गोवर्धनरूपमें पूजाग्रहण, इन्द्रमोहभंग, वरुणलोकगमन, रासलीलाके समय असंख्य रूपोंमें प्रकट होना आदि ऐश्वर्यमयी लीलाएँ भी होती रहती हैं। यहाँ धर्मसंस्थापनका तथा धर्मरक्षणका कार्य व्रजमें भी लगातार चालू रहता है।

इसके बाद तो चाणूर-मुष्टिक तथा मामा कंससे लेकर राजरूपधारी अगणित असुरोंके उद्धारद्वारा धर्मसंस्थापनका कार्य चलता ही रहता है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी सारी लीलाएँ निरन्तर प्रेम-धर्म तथा सनातन मानव-धर्मकी रक्षा एवं विस्तारके रूपमें ही सुसम्पन्न होती हैं। भगवान्का रूप-सौन्दर्य नित्य-नवायमान है। जो देखता है, वही मुग्ध हो जाता है। उनका रूपसौन्दर्य कैसा है—

शारदीय-पूर्णिमा-सुनिर्मल-स्निग्ध-
सुधावर्षी द्युतिमान।
ज्योत्स्ना-स्मित-समूह-विकसित
शुचि शीतल अगणित चन्द्र महान॥
जिनकी विश्व मोहिनी अंगद्युतिसे
सब हो जाते म्लान।
परमोज्ज्वल नीलाभ-श्याम वे
अनुपम विमल-दीप्ति भगवान॥
परमहंस-ऋषि-मुनि-मन-मोहन,
गुरु-जन-मोहन मोहन रूप।
श्रुति-सुरांगना, स्वयं ब्रह्मविद्या
मनमोहन, परम अनूप॥
विश्वनारि-मन स्व-मन
शत्रुमन-मोहन, सर्वरूप-आधार।
सौन्दर्यामृत-माधुर्यामृत-सागर
लहराता सुखसार॥

'शरत्पूर्णिमाके सुनिर्मल स्निग्ध पवित्र शीतल अमृतकी वर्षा करनेवाले, ज्योत्स्नारूप मृदु-हास्य-राशिसे विकसित अगणित समस्त चन्द्रमा भी जिनकी विश्वमोहिनी अंगकान्तिके सामने फीके हो जाते हैं, ऐसे वे अनुपमेय विमल आभावाले परम उज्ज्वल नीलाभ श्यामसुन्दर भगवान् हैं। उनका परमश्रेष्ठ अनुपमेय मोहनरूप ऋषियोंके मनको, गुरुजनोंके मनको, श्रुतियोंके, देवांगनाओंके तथा स्वयं ब्रह्मविद्याके मनको एवं विश्वकी समस्त नारियोंके मनको, शत्रुओंके मनको और स्वयं उनके अपने मनको भी मोहित करनेवाला है। वह रूप सौन्दर्यामृत और माधुर्यामृतका लहराता हुआ समुद्र है, जो समस्त रूपोंका आधार तथा आत्यन्तिक सुखका सार है।'

कहाँ तो श्रीकृष्णका यह सौन्दर्य-माधुर्यसिन्धु विश्वमोहन रूप और कहाँ विकराल दाढ़ोंवाला अर्जुनको भी भयसे कँपा देनेवाला भयानक विराट् रूप! दोनों ही धर्मके संस्थापक रूप हैं। एकसे पवित्र प्रेम-धर्मकी प्रतिष्ठा होती है, दूसरेसे सनातन मानव-धर्मकी।

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके साथ क्यों रहे, क्यों कौरवोंके विपक्षमें भगवान्‌ने पाण्डवोंकी सहायता की? श्रीकृष्ण कौरव-पाण्डवोंको लड़ाकर पृथ्वीको क्षत्रिय-वीरोंसे शून्य नहीं बनाना चाहते थे, न वे पाण्डवोंका अनुचित पक्ष लेकर कौरवोंका नाश ही चाहते थे। वरं उन्होंने सच्चे हृदयसे संधिका प्रयत्न किया था। स्वयं दूत बनकर गये। धृतराष्ट्र और दुर्योधनको बहुत समझाया। युद्धको टालना चाहा। पर दुर्योधनने किसी तरह उनकी बात नहीं मानी। विदुरजीने जब श्रीकृष्णसे कहा कि 'दुर्योधनके पास आपको नहीं आना चाहिये था', तब श्रीकृष्णने विदुरसे कहा—'आपका कथन ठीक है; पर मैं तो युद्धमें मर-मिटनेको उद्यत कौरव-पाण्डवोंमें सच्चे हृदयसे संधिका प्रयत्न करने आया हूँ। हाथियों, घोड़ों तथा रथोंसे युक्त यह पृथ्वी नष्ट होना चाहती है, इसे बचानेवालोंको निस्संदेह बड़ा पुण्य होगा। किसी व्यसन या विपत्तिमें पड़कर क्लेश उठाते हुए मित्रको यथासाध्य समझा-बुझाकर जो मनुष्य उसे बचानेका प्रयत्न नहीं करता, वह बड़ा निर्दय और क्रूर है। बुद्धिमान् पुरुष अपने

मित्रको उसकी चोटी पकड़कर भी बुरे कार्यसे हटानेका प्रयत्न करता है। मेरे सत्-परामर्शको भी दुर्योधन नहीं मानेगा और मुझपर संदेह करेगा तो इससे मेरा क्या बिगड़ेगा? मैं अपने कर्तव्यसे तो उऋण हो जाऊँगा। मैं शान्तिके लिये विद्वानोंद्वारा अनुमोदित अर्थ तथा धर्मके अनुकूल हिंसारहित ही बात कहूँगा। दुर्योधनादि यदि मेरी बातपर ध्यान देंगे तो अवश्य मानेंगे तथा कौरव भी मुझे वास्तवमें शान्तिस्थापनके लिये आया हुआ समझकर मेरा आदर ही करेंगे।'

दुर्योधनने बात नहीं मानी, वह अधर्मपरायण रहा। इसीसे भगवान्ने धर्मयुद्धमें धर्मपरायण पाण्डवोंका साथ दिया। उनका अवश्य ही अर्जुनसे अतुलनीय प्रेम था, पर वे पाण्डवोंका साथ इसीलिये देते थे कि पाण्डवोंके पक्षमें धर्म था।

युद्धारम्भके समय जब धर्मराज युधिष्ठिरने गुरु द्रोणाचार्यके समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया तथा युद्धके लिये आज्ञा माँगकर अपने लिये हितकी सलाह पूछी, तब गुरु द्रोणाचार्यने कहा—

ध्रुवस्ते विजयो राजन् यस्य मन्त्री हरिस्तव।
अहं त्वामभिजानामि रणे शत्रून् विमोक्ष्यसे॥
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।
युद्ध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते॥

(महाभारत, भीष्म० ४३।५९-६०)

'राजन्! तुम्हारी विजय तो निश्चित है, क्योंकि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे मन्त्री (तुम्हें सलाह देनेवाले) हैं। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम युद्धमें शत्रुओंको उनके प्राणोंसे विमुक्त कर दोगे। जहाँ धर्म है, वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है। जाओ! युद्ध करो, पूछो—मैं और क्या बताऊँ?'

इससे सिद्ध है कि भगवान् धर्मके साथ हैं और जहाँ भगवान् हैं, वहाँ धर्म रहता ही है। महाभारतका एक प्रसंग है। इन्द्रने अर्जुनका हित करनेकी इच्छासे महादानी कर्णसे कवच-कुण्डल माँगकर ले लिये

और बदलेमें उनको एक अजेय अमोघ शक्ति देकर यह कह दिया कि 'तुम केवल एक बार जिस-किसीपर भी इसका प्रयोग कर सकोगे। जिसपर प्रयोग करोगे, वह अवश्य मर जायगा।' कर्णने वह शक्ति अर्जुनपर चलानेके लिये सुरक्षित रख छोड़ी थी, वे प्रतिदिन उसकी पूजा करते। महाभारत-युद्धमें एक रात्रिको भीमपुत्र राक्षस घटोत्कचने ऐसा भीषण युद्ध किया कि सारा कौरवदल जीवनसे निराश हो गया। सबने आकर कर्णसे कहा कि 'तुरंत उस शक्तिका प्रयोग करके इस भयानक राक्षसका वध करो, नहीं तो इस रात्रि युद्धमें यह राक्षस हम सभी कौरव-वीरोंका आज ही नाश कर देगा। कोई बचेगा ही नहीं, तब फिर यह शक्ति किस काम आयेगी?' कर्ण भी घबराये हुए थे। उन्होंने उस वैजयन्ती शक्तिको घटोत्कचपर छोड़ दिया। शक्तिके प्रहारसे घटोत्कचका हृदय विदीर्ण हो गया और वह वहीं मरकर गिर पड़ा। उसके मरते ही कौरव योद्धा बाजे बजाकर हर्षनाद करने लगे।

इधर पाण्डवदलमें शोक छा गया। सबके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। परंतु श्रीकृष्ण आनन्दमग्न होकर नाच उठे और अर्जुनको गले लगाकर पीठ ठोंकने तथा बार-बार गर्जना करने लगे।

भगवान्‌को इतना प्रसन्न जान अर्जुन बोले—'मधुसूदन! आज आपको शोकके अवसरपर इतनी प्रसन्नता क्यों हो रही है? घटोत्कचके मारे जानेसे हमारे लिये शोकका अवसर उपस्थित हुआ है। सारी सेना विमुख होकर भागी जा रही है। हमलोग भी बहुत घबरा गये हैं, तो भी आप प्रसन्न हैं। इसका कोई छोटा-मोटा कारण नहीं हो सकता। जनार्दन! बताइये, क्या कारण है इस प्रसन्नताका? यदि बहुत छिपानेकी बात न हो तो अवश्य बता दीजिये। मेरा धैर्य छूटा जा रहा है।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—धनंजय! मेरे लिये इस समय सचमुच ही बड़े आनन्दका अवसर आया है। कारण सुनना चाहते हो? सुनो! तुम जानते हो कर्णने घटोत्कचको मारा है, पर मैं कहता हूँ कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निष्फल करके (एक प्रकारसे) घटोत्कचने ही

कर्णको मार डाला है। अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझो। संसारमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो कर्णके हाथमें इस 'शक्ति' के रहनेपर उसके सामने ठहर सकता और यदि उसके पास कवच तथा कुण्डल भी होते, तब तो वह देवताओंसहित तीनों लोकोंको भी जीत सकता था। उस अवस्थामें इन्द्र, कुबेर, वरुण अथवा यमराज भी युद्धमें उसका सामना नहीं कर सकते थे। हम और तुम सुदर्शन-चक्र और गाण्डीव लेकर भी उसे जीतनेमें असमर्थ हो जाते। तुम्हारा ही हित करनेके लिये इन्द्रने छलसे उसे कुण्डल और कवचसे हीन कर दिया था। उनके बदलेमें जबसे इन्द्रने उसे अमोघ शक्ति दे दी थी, तबसे वह तुमको सदा मरा हुआ ही मानता था। आज यद्यपि उसकी ये सारी चीजें नहीं रहीं तो भी तुम्हारे सिवा दूसरे किसीसे वह नहीं मारा जा सकता। कर्ण ब्राह्मणोंका भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतधारी और शत्रुओंपर भी दया करनेवाला है, इसलिये वह वृष (धर्म) कहलाता है। सम्पूर्ण देवता चारों ओरसे कर्णपर बाणोंकी वर्षा करें और उसपर मांस और रक्त उछालें, तो भी वे उसे नहीं जीत सकते।

× × ×

'यदि इस महासमरमें कर्ण अपनी शक्तिके द्वारा घटोत्कचको नहीं मार डालता तो स्वयं मुझे इसका वध करना पड़ता। इसके द्वारा तुमलोगोंका प्रिय कार्य करवाना था, इसलिये मैंने पहले ही इसका वध नहीं किया। घटोत्कच ब्राह्मणोंका द्वेषी और यज्ञोंका नाश करनेवाला था। यह पापात्मा धर्मका लोप कर रहा था; इसीसे इस प्रकार इसका वध करवाया है। जो धर्मका लोप करनेवाले हैं, वे सभी मेरे वध्य हैं। मैंने धर्म-स्थापनाके लिये प्रतिज्ञा कर ली है। जहाँ वेद, सत्य, दम, पवित्रता, धर्म, लज्जा, श्री, धैर्य और क्षमाका वास है, वहाँ मैं सदा ही क्रीडा किया करता हूँ— यह बात मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ। (तुम पाण्डवोंमें धर्मके इन सब गुणोंका निवास है, इसीलिये मैं तुमलोगोंके साथ हूँ।)'

× × ×

भगवान् श्रीकृष्ण धर्मरक्षक तथा धर्मसंस्थापक हैं। इसीसे वे अधार्मिक घटोत्कचका स्वयं अपने हाथों वध करना चाहते थे, यद्यपि घटोत्कच पाण्डव भीमका पुत्र होनेके कारण श्रीकृष्णके कुटुम्बका ही एक सदस्य था। श्रीकृष्ण अपने स्वजनोंके, कुटुम्ब-परिवारोंके, सम्बन्धियोंके नित्य हितैषी और हित-साधक थे, परंतु धर्मविरोधी होनेपर वे किसीको स्वजन-कुटुम्बीके नाते क्षमा नहीं करते थे। धर्मरक्षण एवं धर्मके द्वारा लोकसंग्रह या लोकहितपर उनकी दृष्टि रहती थी। कंस सगे मामा थे, पर अधार्मिक होनेके कारण स्वयं श्रीकृष्णने उनका वध किया। शिशुपाल तो पाण्डवोंके सदृश ही श्रीकृष्णकी बूआका लड़का था, पर पापाचारी था, अतएव उन्होंने उसको दण्ड दिया। यहाँतक कि जब उन्होंने देखा कि उन्हींका आश्रित यादववंश सुरापान-परायण, धन-वैभवसे उन्मत्त और अभिमानमें चूर होकर अधार्मिक और उद्दण्ड हुआ जा रहा है, तब उसके भी विनाशकी व्यवस्था करा दी। उन्हें धर्म प्रिय है, अधार्मिक स्वजन नहीं।

महाभारत-युद्धके समय एक दिन अपने भाइयों तथा योद्धाओंको बुरी तरह पराजित हुए देखकर दुर्योधनने भीष्मपितामहसे पाण्डवोंकी विजयका कारण पूछा। उसके उत्तरमें भीष्मजीने कहा कि 'पाण्डव धर्मात्मा हैं और पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित हैं। इसीसे वे जीत रहे हैं और जीतेंगे।' उसके बाद भीष्मजीने भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका विस्तारसे वर्णन किया और दुर्योधनसे कहा कि 'मैं तो तुम्हें राक्षस समझता हूँ, क्योंकि तुम परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णसे और अर्जुनसे द्वेष करते हो। मैं तुमसे ठीक-ठीक कह रहा हूँ कि श्रीकृष्ण सनातन, अविनाशी, सर्वलोकमय, नित्य, जगदीश्वर, जगद्धर्ता और अविकारी हैं। ये ही युद्ध करनेवाले हैं, ये ही 'जय' हैं और ये ही जीतनेवाले हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं जय है। श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं, अतएव उन्हींकी विजय होगी।'*

---

* दुर्योधनके प्रति पितामह भीष्मने बड़े विस्तारसे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन किया है। उसे महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय ६५ से ६८ तक देखना चाहिये। इसी प्रकार शान्तिपर्व अध्याय ४७ से ५१ तक देखिये।

यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः॥

× × ×

धृताः पाण्डुसुता राजन् जयश्चैषां भविष्यति॥

(महाभारत, भीष्म० ६६। ३५-३६)

तदनन्तर दुर्योधनके पूछनेपर भीष्मजीने कहा कि 'ये श्रीकृष्ण ही सब प्राणियोंके आश्रय हैं, जो पुरुष पूर्णिमा और अमावास्याको इनका पूजन करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। ये परम तेजःस्वरूप और समस्त लोकोंके पितामह हैं। ये सच्चे आचार्य, गुरु और पिता हैं। जिसपर ये प्रसन्न हैं, उसने मानो सभी अक्षय लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। जो पुरुष इस स्तुतिका पाठ करता है, वह कुशलसे रहता है और सुख प्राप्त करता है। उसका मोह नष्ट हो जाता है। उन्हें इस प्रकार यथार्थरूपसे जानकर ही—समस्त जगत्के स्वामी और सम्पूर्ण योगोंके अधीश्वर जानकर ही युधिष्ठिरने इनकी शरण ली है।' इसके पश्चात् भीष्मजीने दुर्योधनको श्रीकृष्णका ब्रह्मभूत स्तोत्र सुनाया।

श्रीकृष्णका ब्रह्मभूत स्तोत्र

भीष्म उवाच

शृणु चेदं महाराज ब्रह्मभूतं स्तवं मम।
ब्रह्मर्षिभिश्च देवैश्च यः पुरा कथितो भुवि॥ १॥
साध्यानामपि देवानां देवदेवेश्वरः प्रभुः।
लोकभावनभावज्ञ इति त्वां नारदोऽब्रवीत्॥ २॥
भूतं भव्यं भविष्यं च मार्कण्डेयोऽभ्युवाच ह।
यज्ञं त्वां चैव यज्ञानां तपश्च तपसामपि॥ ३॥
देवानामपि देवं च त्वामाह भगवान् भृगुः।
पुराणं चैव परमं विष्णो रूपं तवेति च॥ ४॥
वासुदेवो वसूनां त्वं शक्रं स्थापयिता तथा।
देव देवोऽसि देवानामिति द्वैपायनोऽब्रवीत्॥ ५॥

पूर्वे प्रजानिसर्गे च दक्षमाहुः प्रजापतिम्।
स्त्रष्टारं सर्वलोकानामंगिरास्त्वां तथाब्रवीत्॥ ६ ॥
अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तं ते मनसि स्थितम्।
देवास्त्वत्सम्भवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत्॥ ७ ॥
शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी तथा।
जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः॥ ८ ॥
एवं त्वामभिजानन्ति तपसां भाविता नराः।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चासि सत्तमः॥ ९ ॥
राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
सर्वधर्मप्रधानानां त्वं गतिर्मधुसूदन॥ १०॥
इति नित्यं योगविद्भिर्भगवान् पुरुषोत्तमः।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्तूयतेऽभ्यर्च्यते हरिः॥ ११॥
एष ते विस्तरस्तात संक्षेपश्च प्रकीर्तितः।
केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भज केशवम्॥ १२॥

'राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्मर्षि और देवताओंने इन श्रीकृष्णका जो ब्रह्ममय स्तोत्र कहा है, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो—नारदजीने कहा है—'आप साध्यगण और देवताओंके भी देवाधिदेव हैं तथा सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले और उनके अन्तःकरणके साक्षी हैं।' मार्कण्डेयजीने कहा है—'आप ही भूत, भविष्यत् और वर्तमान हैं तथा आप यज्ञोंके यज्ञ और तपोंके तप हैं।' भृगुजी कहते हैं—'आप देवोंके देव हैं तथा भगवान् विष्णुका जो पुरातन परम रूप है, वह भी आप ही हैं।' महर्षि द्वैपायनका कथन है—'आप वसुओंमें वासुदेव, इन्द्रको भी स्थापित करनेवाले और देवताओंके परम देव हैं।' अंगिराजी कहते हैं—'आप पहले प्रजापतिसर्गमें दक्ष थे तथा आप ही समस्त लोकोंकी रचना करनेवाले हैं।' देवल मुनि कहते हैं—'अव्यक्त आपके शरीरसे हुआ है, व्यक्त आपके मनमें स्थित है तथा सब देवता भी आपके मनसे उत्पन्न हुए हैं।' असित मुनिका कथन

है—'आपके सिरसे स्वर्गलोक व्याप्त है और भुजाओंसे पृथ्वी तथा आपके उदरमें तीनों लोक हैं। आप सनातन पुरुष हैं। तपःशुद्ध महात्मालोग आपको ऐसा समझते हैं तथा आत्मतृप्त ऋषियोंकी दृष्टिमें भी आप सर्वोत्कृष्ट सत्य हैं। मधुसूदन! जो सम्पूर्ण धर्मोंमें अग्रगण्य और संग्रामसे पीछे हटनेवाले नहीं हैं, उन उदारहृदय राजर्षियोंके परमाश्रय भी आप ही हैं।' योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारादि इसी प्रकार श्रीपुरुषोत्तम भगवान्का सर्वदा पूजन और स्तवन करते हैं। राजन्! इस तरह मैंने विस्तार तथा संक्षेपसे तुम्हें श्रीकृष्णका स्वरूप सुना दिया। अब तुम प्रसन्नचित्तसे इनका भजन करो।'

भगवान् श्रीकृष्णने जब प्राग्ज्योतिषपुरके नरकासुरको मारकर उसके द्वारा हरण की हुई सोलह हजार राजकुमारियोंपर दया करके अकेले ही उनसे विवाह कर लिया और यह बात जब नारदजीने सुनी, तब उन्हें भगवान्की गृहचर्या देखनेकी बड़ी इच्छा हुई। नारदजी अत्यन्त उत्सुक होकर द्वारका आये, द्वारकामें श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें सोलह हजारसे अधिक बड़े सुन्दर कलापूर्ण सुसज्जित महल थे। नारदजी एक महलमें गये। वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके समीप बैठे थे। रुक्मिणीजी चँवरसे हवा कर रही थीं। नारदजीको देखते ही भगवान् पलंगसे उठे। नारदजीकी उन्होंने अभ्यर्थना-पूजा की, उनके चरण पखारकर चरणामृत सिर चढ़ाया और नम्र शब्दोंमें उनका गुणगान करके उनसे सेवा पूछी।

नारदजीने भगवान्का गुणगान तथा स्तवन करते हुए कहा—'भगवन्! आपके श्रीचरण ही संसारकूपमें पड़े लोगोंके निकलनेके लिये अवलम्बन हैं। आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपके चरणकमलोंकी स्मृति सदा बनी रहे और मैं जहाँ जैसे भी रहूँ, उन चरणोंके ध्यानमें ही लीन रहूँ।'

तदनन्तर नारदजी एक-एक करके सभी महलोंमें गये। भगवान् श्रीकृष्णने सर्वत्र उनका स्वागत-सत्कार किया। नारदजीने देखा—कहीं श्रीकृष्ण गृहस्थके कार्य सम्पादन कर रहे हैं, कहीं हवन कर रहे हैं, कहीं

पंच-महायज्ञोंसे देवाराधन कर रहे हैं, कहीं ब्राह्मण-भोजन करा रहे हैं, कहीं यज्ञावशेष भोजन कर रहे हैं, कहीं संध्या, तो कहीं मौन होकर गायत्री-जप कर रहे हैं, कहीं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित गौओंका दान कर रहे हैं। कहीं एकान्तमें बैठकर प्रकृतिसे अतीत पुराण-पुरुषका ध्यान कर रहे हैं, कहीं गुरुजनोंको अभीष्ट वस्तु देकर उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं, कहीं देवताओंका पूजन, तो कहीं इष्टापूर्तरूप धर्मका सम्पादन कर रहे हैं। इस प्रकार वे सर्वत्र वर्णाश्रमोचित तथा आध्यात्मिक धर्म-साधनमें लगे हुए हैं।'

नारदजीने कहा—'योगेश्वर आत्मदेव! आपकी योगमाया ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े मायावियोंके लिये भी अगम्य है, पर आपके चरणोंकी सेवा करनेके कारण वह योगमाया हमारे सामने प्रकट हो गयी है, हम उसे जान गये हैं। देवताओंके भी आराध्य भगवन्! सारे भुवन आपके सुन्दर यशसे परिपूर्ण हो रहे हैं। अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी त्रिभुवन-पावनी लीलाका गान करता हुआ उन लोकोंमें विचरता रहूँ।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता।
तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ६९। ४०)

'नारद! मैं ही धर्मका उपदेशक, उपदेशके अनुसार स्वयं उसका आचरण करनेवाला तथा उसका अनुष्ठान करनेवालोंका अनुमोदन करनेवाला हूँ। मेरे आचरणसे लोगोंको शिक्षा मिलेगी, इसलिये मैं स्वयं धर्मका आचरण करता हूँ। पुत्र नारद! तुम मेरी मायासे मोहित न होना—मैंने जो तुम्हारे चरण धोये, इससे खेद मत करना।' कैसा सुन्दर आदर्श है धर्माचरणका!

भगवान् श्रीकृष्णका समस्त जीवन-लीला-चरित धर्ममय है। उनके आचरणमें तो केवल धर्म है ही, उनके उपदेश भी धर्मपूर्ण हैं। रणांगणमें अपने परम धर्ममय गीताका उपदेश मित्र अर्जुनको किया और अन्तमें सखा उद्धवको धर्मोपदेश किया। महाभारत, भीष्मपर्व और श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्धमें ये दोनों धर्ममय गीतोपदेश हैं।

भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीताको '**धर्म्यं संवाद**'[१] (धर्ममय संवाद) कहा है और इसमें भी भक्तिके स्वरूप-वर्णनको '**धर्म्यामृत**'[२] (धर्ममय अमृत) बतलाया है।

श्रीकृष्ण जहाँ समस्त अवतारोंके मूल अवतारी, षडैश्वर्यसम्पन्न सच्चिदानन्द नित्य-विग्रह, सर्वेश्वरेश्वर, सर्व-लोक-महेश्वर, निर्गुण-निराकार (स्वरूपभूत गुणमय तथा पांचभौतिक आकाररहित) सर्वातीत, सर्वमय, सर्वात्मा परमात्मा पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् हैं। वहीं वे नन्द-यशोदाके प्यारे दुलारे लाल, गोपबालकोंके सखा कन्हैया भैया, गोपांगनाओंके प्राणवल्लभ प्रेमास्पद, कौतुकप्रिय बालक, संगीत-वाद्य-नृत्य आदि विविध कलाओंके आचार्य, वसुदेव-देवकीके सुपुत्र, श्रीरुक्मिणी आदि सहस्रों पतिव्रताओंके आराध्य पति, दीन-दुःखी-गरीबोंके आश्रय, प्रेमियोंके प्रेमी, भक्तोंके भक्त, भक्तवत्सल, भक्तिप्रिय, भक्त-पराधीन, भक्तवांछाकल्पतरु, सतत प्रीतिवर्धक मित्र, विनोदप्रिय, विचित्र सारथि, महारथियोंके महारथी, दुर्धर्ष योद्धा, रणनीतिके आचार्य, सर्वशस्त्रास्त्रसम्पन्न, महान् बलवान्, मल्लविद्या-विशारद, राजनीतिविशारद, कूटनीतिके ज्ञाता, महान् बुद्धिमान्, परम चतुर, नीतिनिपुण, आदर्श निष्काम कर्मयोगी, महान् ज्ञानी, परम तपस्वी, परम योगी, योगीश्वरेश्वर, वेदज्ञ, वेदमय, सर्वशास्त्रज्ञ, सर्वथा अपरिजेय, दयामय-करुणामय, प्रेममय, पुण्यमय, न्यायशील, क्षमाशील, परमसुशील, निरपेक्ष, स्पष्टवादी, सत्यवादी, परम वाग्मी, परम उपदेशक, लोकनायक, लोकहितैषी, सर्वभूतहितैषी, ममतारहित, अहंकाररहित, कामनारहित, आसक्तिरहित, विशुद्ध-चरित्र, शिष्टपालक, दुष्टनाशक, असुरसंहारक, गोसेवक, पशु-पक्षियोंके तथा

१- अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

(१८। ७०)

२- ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

(१२। २०)

प्रकृतिके प्रेमी, प्रकृतिके स्वामी, प्रकृति नटीके सूत्रधार, महामायावी, मायाके अधीश्वर और नियामक, भीषणोंके भीषण, परम सुन्दर, परम मधुर—असंख्य गुणगणसम्पन्न हैं और इन सभी गुणोंके द्वारा वे सदा ही धर्मका रक्षण तथा संस्थापन करते हैं।

धर्म मूल पावन परम बंदौं पद-अरबिंद।
बस्यौ जहाँ रस-पान रत मम मन मत्त मिलिंद॥

भगवान् श्रीकृष्णके पवित्र पावन चरणकमलोंमें बार बार नमस्कार।

महाभारतमें श्रीकृष्ण-महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् सच्चिदानन्दघन स्वयं भगवान् हैं। उनकी भगवत्ता और महत्ता उनकी लीलाओंसे ही प्रत्यक्ष प्रकट है एवं इस सत्य तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले वचन विविध ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं। श्रद्धालु, विश्वासी तथा शास्त्रोंपर आस्था रखनेवाले पुरुषोंके लिये तो इस विषयमें कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। पर जो लोग भगवान् श्रीकृष्णकी भगवत्तामें संदेह करते हैं और ऐसा मानते हैं कि श्रीमद्भागवत आदिकी तरह महाभारतमें श्रीकृष्णको साक्षात् भगवान् नहीं माना गया है, उनकी जानकारीके लिये महाभारतमेंसे ही कुछ वचनोंका अनुवाद यहाँ दिया जाता है। आशा है इसे पढ़नेसे कुतर्कियोंको छोड़कर बहुतोंकी न्यूनाधिक संदेह-निवृत्ति होगी और सभीको लाभ होगा।

जनमेजयके प्रति वैशम्पायनके वचन

उन्हीं दिनों विश्ववन्दित महायशस्वी भगवान् विष्णु जगत्के जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे प्रकट हुए। वे भगवान् आदि-अन्तसे रहित, द्युतिमान्, सम्पूर्ण जगत्के कर्ता तथा प्रभु हैं। उन्हींको अव्यक्त, अक्षर (अविनाशी), ब्रह्म और त्रिगुणमय प्रधान कहते हैं। आत्मा, अव्यय, प्रकृति (उपादान), प्रभव (उत्पत्ति-कारण), प्रभु (अधिष्ठाता), पुरुष (अन्तर्यामी), विश्वकर्मा, सत्त्वगुणसे प्राप्त होने योग्य तथा प्रणवाक्षर भी वे ही हैं, उन्हींको अनन्त, अचल, देव, हंस, नारायण, प्रभु, धाता, अजन्मा, अव्यक्त, पर, अव्यय, कैवल्य, निर्गुण, विश्वरूप, अनादि, जन्मरहित और अधिकारी कहा गया है। वे सर्वव्यापी, परम पुरुष परमात्मा सबके कर्ता और सम्पूर्ण भूतोंके पितामह हैं। उन्होंने ही धर्मकी वृद्धिके लिये अन्धक और वृष्णिकुलमें बलराम और श्रीकृष्ण-रूपमें अवतार लिया था। वे दोनों भाई सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंके ज्ञाता, महान् पराक्रमी और समस्त शास्त्रोंके ज्ञानमें परम प्रवीण थे।

(आदिपर्व ६२।९९—१०४)

पाण्डवोंके राजसूय-यज्ञमें शिशुपालके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी अग्रपूजाका विरोध किये जानेपर भीष्मजी कहते हैं

भीष्मजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण जगत्‌में सबसे बढ़कर हैं। वे ही परम पूजनीय हैं। जो उनकी अग्रपूजा स्वीकार नहीं करता है, उसकी अनुनय-विनय नहीं करनी चाहिये। वह सान्त्वना देने या समझाने-बुझानेके योग्य भी नहीं है। जो योद्धाओंमें श्रेष्ठ क्षत्रिय जिसे युद्धमें जीतकर अपने वशमें करके छोड़ देता है, वह उस पराजित क्षत्रियके लिये गुरुतुल्य पूज्य हो जाता है। राजाओंके इस समुदायमें एक भी भूपाल ऐसा नहीं दिखायी देता, जो युद्धमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णके तेजसे परास्त न हो चुका हो। महाबाहु श्रीकृष्ण केवल हमारे लिये ही परम पूजनीय हों, ऐसी बात नहीं है, ये तो तीनों लोकोंके पूजनीय हैं। श्रीकृष्णके द्वारा संग्राममें अनेक क्षत्रियशिरोमणि परास्त हुए हैं। यह सम्पूर्ण जगत् वृष्णिकुलभूषण भगवान् श्रीकृष्णमें ही पूर्ण रूपसे प्रतिष्ठित है। इसीलिये हम दूसरे वृद्ध पुरुषोंके होते हुए भी श्रीकृष्णकी ही पूजा करते हैं, दूसरोंकी नहीं। राजन्! तुम्हें श्रीकृष्णके प्रति वैसी बातें मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये थीं। उनके प्रति तुम्हें ऐसी बुद्धि नहीं रखनी चाहिये। मैंने बहुत-से ज्ञान-वृद्ध महात्माओंका संग किया है। अपने यहाँ पधारे हुए उन संतोंके मुखसे अनन्त गुणशाली भगवान् श्रीकृष्णके असंख्य बहुसम्मत गुणोंका वर्णन सुना है। जन्मकालसे लेकर अबतक इन बुद्धिमान् श्रीकृष्णके जो-जो चरित्र बहुधा बहुतेरे मनुष्योंद्वारा कहे गये हैं, उन सबको मैंने बार-बार सुना है। चेदिराज! हमलोग किसी कामनासे अपना सम्बन्धी मानकर अथवा इन्होंने हमारा किसी प्रकारका उपकार किया है, इस दृष्टिसे श्रीकृष्णकी पूजा नहीं कर रहे हैं। हमारी दृष्टि तो यह है कि ये इस भूमण्डलके सभी प्राणियोंको सुख पहुँचानेवाले हैं और बड़े-बड़े संत-महात्माओंने इनकी पूजा की है। हम उनके यश, शौर्य और विजयको भलीभाँति जानकर

उनकी पूजा कर रहे हैं। यहाँ बैठे हुए लोगोंमेंसे कोई छोटा-सा बालक भी ऐसा नहीं है, जिसके गुणोंकी हमलोगोंने पूर्णतः परीक्षा न की हो। श्रीकृष्णके गुणोंको ही दृष्टिमें रखते हुए हमने वयोवृद्ध पुरुषोंका उल्लंघन करके इनको ही परम पूजनीय माना है। ब्राह्मणोंमें वही पूजनीय समझा जाता है, जो ज्ञानमें बड़ा हो तथा क्षत्रियोंमें वही पूजाके योग्य है, जो बलमें सबसे अधिक हो; वैश्योंमें वही सर्वमान्य है, जो धन-धान्यमें बढ़कर हो, केवल शूद्रोंमें ही जन्मकालको ध्यानमें रखकर जो अवस्थामें बड़ा हो, उसको पूजनीय माना जाता है। श्रीकृष्णके परम पूजनीय होनेमें दोनों ही कारण विद्यमान हैं। इनमें वेद-वेदांगोंका ज्ञान तो है ही, बल भी सबसे अधिक है। श्रीकृष्णके सिवा संसारके मनुष्योंमें दूसरा कौन सबसे बढ़कर है।

दान, दक्षता, शास्त्रज्ञान, शौर्य, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि—ये सभी सद्गुण भगवान् श्रीकृष्णमें नित्य विद्यमान हैं। जो अर्घ्य पानेके सर्वथा योग्य और पूजनीय हैं, उन सकल-गुणसम्पन्न, श्रेष्ठ, पिता और गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी हमलोगोंने पूजा की है। अतः सब राजालोग इनके लिये हमें क्षमा करें। श्रीकृष्ण हमारे ऋत्विक्, गुरु, आचार्य, स्नातक, राजा और प्रिय मित्र सब कुछ हैं। इसीलिये हमने इनकी अग्रपूजा की है। भगवान् श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। यह सारा चराचर विश्व इन्हींके लिये प्रकट हुआ है। ये ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता तथा सम्पूर्ण भूतोंसे परे हैं, अतः भगवान् अच्युत ही सबसे बढ़कर पूजनीय हैं। महत्तत्त्व, अहंकार, मनसहित ग्यारह इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके प्राणी सभी भगवान् श्रीकृष्णमें ही प्रतिष्ठित हैं। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, दिशा और विदिशा—सब इन्हींमें स्थित हैं। जैसे वेदोंमें अग्निहोत्र-कर्म, छन्दोंमें गायत्री, मनुष्योंमें राजा, नदियों (जलाशयों)-में समुद्र, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, तेजोमय पदार्थोंमें सूर्य, पर्वतोंमें मेरु और पक्षियोंमें गरुड श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार देवलोकसहित सम्पूर्ण लोकोंमें

ऊपर-नीचे, दायें-बायें, जितने भी जगत्‌के आश्रय हैं, उन सबमें भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रेष्ठ हैं।

(सभापर्व ३८। ६—२९)

धर्मराज युधिष्ठिरके प्रति महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं

मार्कण्डेय बोले—नरश्रेष्ठ! पुरातन प्रलयके समय मुझे जिन कमलदललोचन देवता भगवान् बालमुकुन्दका दर्शन हुआ था, तुम्हारे सम्बन्धी ये भगवान् श्रीकृष्ण वे ही हैं। कुन्तीनन्दन! इन्हींके वरदानसे मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति भूलती नहीं है। मेरी दीर्घकालीन आयु और स्वच्छन्द मृत्यु भी इन्हींकी कृपाका प्रसाद है। ये वृष्णिकुलभूषण महाबाहु श्रीकृष्ण ही वे सर्वव्यापी, अचिन्त्यस्वरूप, पुराण-पुरुष श्रीहरि हैं, जो पहले बालरूपमें मुझे दिखायी दिये थे। वे ही यहाँ अवतीर्ण हो भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते हुए-से दीख रहे हैं। श्रीवत्सचिह्न जिनके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ाता है, वे भगवान् गोविन्द ही इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, सनातन प्रभु और प्रजापतियोंके भी पति हैं। इन आदि देवस्वरूप, विजयशील, पीताम्बरधारी पुरुष, वृष्णि-कुल-भूषण श्रीकृष्णको देखकर मुझे इस पुरातन घटनाकी स्मृति हो आयी है। कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डवो! ये माधव ही समस्त प्राणियोंके पिता और माता हैं। ये ही सबको शरण देनेवाले हैं, अतः तुम सब लोग इन्हींकी शरणमें जाओ।

(वनपर्व १८९। ५३—५७)

जयद्रथके प्रति भगवान् शंकरके वचन

श्रीशंकरने कहा—राजन्! वे ही भगवान् विष्णु दुष्टोंका दमन और धर्मका संरक्षण करनेके लिये मनुष्योंके बीच यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। उन्हींको 'श्रीकृष्ण कहते हैं। वे अनादि, अनन्त, अजन्मा, दिव्यस्वरूप, सर्वसमर्थ और विश्ववन्दित हैं। सिन्धुराज! विद्वान् पुरुष उन्हीं भगवान्‌की महिमा गाते और उन्हींके पावन चरित्रोंका वर्णन

करते हैं। उन्हींको अपराजित शंख-चक्रगदाधारी, पीताम्बर-विभूषित श्रीवत्सधारी भगवान् श्रीकृष्ण कहा गया है। अस्त्रविद्याके विद्वानोंमें श्रेष्ठ अर्जुन उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित हैं। शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अतुलपराक्रमी श्रीमान् कमलनयन श्रीकृष्ण एक ही रथपर अर्जुनके समीप बैठकर उनकी सहायता करते हैं। इस कारण अर्जुनको कोई नहीं जीत सकता। उनका वेग सहन करना देवताओंके लिये भी कठिन है, फिर कौन ऐसा मनुष्य है, जो युद्धमें अर्जुनपर विजय पा सके? (वनपर्व ३१। ७१—७६)

दुर्योधनके प्रति धृतराष्ट्रके वचन

धृतराष्ट्र बोले—वह कर्म ऐसा है, जिसकी साधु पुरुषोंने सदा निन्दा की है। वह अपयशकारक तो है ही, तू उसे कर नहीं सकता, परंतु तेरे-जैसा कुलांगार और मूर्ख मनुष्य उसे करनेकी चेष्टा करता है। सुनता हूँ, तू अपने पापी सहायकोंसे मिलकर इन दुर्धर्ष एवं दुर्जय वीर कमलनयन श्रीकृष्णको कैद करना चाहता है। ओ मूढ़ ! इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी जिन्हें बलपूर्वक अपने वशमें नहीं कर सकते, उन्हींको तू बंदी बनाना चाहता है। तेरी यह चेष्टा वैसी ही है, जैसे कोई बालक चन्द्रमाको पकड़ना चाहता हो। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, असुर और नाग भी संग्राम-भूमिमें जिनका वेग नहीं सह सकते, उन भगवान् श्रीकृष्णको तू नहीं जानता। जैसे वायुको हाथसे पकड़ना दुष्कर है, चन्द्रमाको हाथसे छूना कठिन है और पृथ्वीको सिरपर धारण करना असम्भव है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको बलपूर्वक पकड़ना दुष्कर है।

(उद्योगपर्व १३०। ३५—३९)

दुर्योधनके प्रति विदुरके वचन

विदुर बोले—दुर्योधन! इस समय मेरी बातपर ध्यान दो। सौभद्वारमें द्विविद नामसे प्रसिद्ध एक वानरोंका राजा रहता था, जिसने एक दिन पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा करके भगवान् श्रीकृष्णको आच्छादित कर दिया। वह पराक्रम करके सभी उपायोंसे श्रीकृष्णको

पकड़ना चाहता था, परंतु उन्हें कभी पकड़ न सका। उन्हीं श्रीकृष्णको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो। पहलेकी बात है, प्राग्ज्योतिषपुरमें गये हुए श्रीकृष्णको दानवोंसहित नरकासुरने भी वहाँ बंदी बनानेकी चेष्टा की; परंतु वह भी वहाँ सफल न हो सका। उन्हींको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो। अनेक युगों तथा असंख्य वर्षोंकी आयुवाले नरकासुरको युद्धमें मारकर श्रीकृष्ण उसके यहाँसे सहस्रों राजकन्याओंको (उद्धार करके) ले गये और उन सबके साथ उन्होंने विधिपूर्वक विवाह किया। निर्मोचनमें छः हजार बड़े-बड़े असुरोंको भगवान्ने पाशोंमें बाँध लिया। वे असुर भी जिन्हें बंदी न बना सके, उन्हींको तुम बलपूर्वक वशमें करना चाहते हो। भरतश्रेष्ठ! इन्होंने ही बाल्यावस्थामें बकी पूतनाका वध किया था और गौओंकी रक्षाके लिये अपने हाथपर गोवर्धन पर्वतको धारण किया था। अरिष्टासुर, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज केशी और कंस भी लोकहितके विरुद्ध आचरण करनेपर श्रीकृष्णके ही हाथसे मारे गये थे। जरासंध, दन्तवक्त्र, पराक्रमी शिशुपाल और बाणासुर भी इन्हींके हाथसे पराभूत हुए हैं तथा अन्य बहुत-से राजाओंका भी इन्होंने ही संहार किया है। अमित तेजस्वी श्रीकृष्णने राजा वरुणपर विजय पायी है। इन्होंने अग्निदेवको भी पराजित किया है और पारिजातहरण करते समय साक्षात् शचीपति इन्द्रको भी जीता है। इन्होंने एकार्णवके जलमें सोते समय मधु और कैटभ नामक दैत्योंको मारा था और दूसरा शरीर धारण करके हयग्रीव नामक राक्षसका भी इन्होंने ही वध किया था। ये ही सबके कर्ता हैं, इनका दूसरा कोई कर्ता नहीं है। सबके पुरुषार्थके कारण भी यही हैं। ये भगवान् श्रीकृष्ण जो-जो इच्छा करें, वह सब अनायास ही कर सकते हैं। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले इन भगवान् गोविन्दका पराक्रम भयंकर है। तुम इन्हें अच्छी तरह नहीं जानते। ये क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान भयानक हैं। ये सत्पुरुषोंद्वारा प्रशंसित एवं तेजकी राशि हैं। अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णका तिरस्कार करनेपर तुम

अपने मन्त्रियोंसहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे पतंग आगमें पड़कर भस्म हो जाता है। (उद्योगपर्व १३० । ४०—५३)

धृतराष्ट्रके प्रति संजयके वचन

संजयने कहा—राजन्! अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों बड़े सम्मानित धनुर्धर हैं। वे (यद्यपि सदा साथ रहनेवाले नर और नारायण हैं, तथापि) लोककल्याणकी कामनासे पृथक्-पृथक् प्रकट हुए हैं और सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। प्रभो! उदारचेता भगवान् वासुदेवका सुदर्शन नामक चक्र उनकी मायासे अलक्षित होकर उनके पास रहता है। उसके मध्यभागका विस्तार लगभग साढ़े तीन हाथका है। वह भगवान्के संकल्पके अनुसार (विशाल एवं तेजस्वी रूप धारण करके शत्रुसंहारके लिये) प्रयुक्त होता है। कौरवोंपर उसका प्रभाव प्रकट नहीं है। पाण्डवोंको वह अत्यन्त प्रिय है। वह सबसे सार-असारभूत बलको जाननेमें समर्थ और तेज:पुंजसे प्रकाशित होनेवाला है। महाबली भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त भयंकर प्रतीत होनेवाले नरकासुर, शम्बरासुर, कंस तथा शिशुपालको भी खेल-ही-खेलमें जीत लिया। पूर्णतः स्वाधीन एवं श्रेष्ठस्वरूप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण मनके संकल्पमात्रसे ही भूतल, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकको भी अपने अधीन कर सकते हैं। राजन्! आप जो बारम्बार पाण्डवोंके विषयमें उनके सार या असारभूत बलको जाननेके लिये मुझसे पूछते रहते हैं, वह सब आप मुझसे संक्षेपमें सुनिये। एक ओर सम्पूर्ण जगत् हो और दूसरी ओर अकेले भगवान् श्रीकृष्ण हों तो सारभूत बलकी दृष्टिसे वे भगवान् जनार्दन ही सम्पूर्ण जगत्से बढ़कर सिद्ध होंगे। श्रीकृष्ण अपने मानसिक संकल्पमात्रसे इस सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर सकते हैं, परंतु उन्हें भस्म करनेमें यह सारा जगत् समर्थ नहीं हो सकता। जिस ओर सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता है, उसी ओर भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं और जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है। समस्त प्राणियोंके आत्मा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण खेल-सा करते हुए ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकका संचालन करते हैं। वे इस समय समस्त लोकको

मोहित-सा करते हुए पाण्डवोंके मिससे आपके अधर्मपरायण मूढ़ पुत्रोंको भस्म करना चाहते हैं। ये भगवान् केशव ही अपनी योगशक्तिसे निरन्तर कालचक्र, संसारचक्र तथा युगचक्रको घुमाते रहते हैं। मैं आपसे यह सच कहता हूँ कि एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही काल, मृत्यु तथा चराचर जगत्‌के स्वामी एवं शासक हैं। महायोगी श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी एवं ईश्वर होते हुए भी खेतीको बढ़ानेवाले किसानकी भाँति सदा नये-नये कर्मोंका आरम्भ करते रहते हैं। भगवान् केशव अपनी मायाके प्रभावसे सब लोगोंको मोहमें डाले रहते हैं, किंतु जो मनुष्य केवल उन्हींकी शरण ले लेते हैं, वे उनकी मायासे मोहित नहीं होते।

(उद्योगपर्व ६८ : १—१५)

धृतराष्ट्र संजयसे कहते हैं

धृतराष्ट्र बोले—संजय! तुम भगवान् श्रीकृष्णके नाम और कर्मोंका अभिप्राय जानते हो, अत: मेरे प्रश्नके अनुसार एक बार पुनः कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णका वर्णन करो।

संजयने कहा—राजन्! मैंने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके नामोंकी मंगलमयी व्युत्पत्ति सुन रखी है, उसमें जितना मुझे स्मरण है, उतना बता रहा हूँ। वास्तवमें तो भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंकी पहुँचसे परे हैं। भगवान् समस्त प्राणियोंके निवासस्थान हैं तथा वे सब भूतोंमें वास करते हैं, इसलिये 'वसु' हैं एवं देवताओंकी उत्पत्तिके स्थान होनेसे और समस्त देवता उनमें वास करते हैं, इसलिये उन्हें 'देव' कहा जाता है। अतएव उनका नाम 'वासुदेव' है, ऐसा जानना चाहिये। बृहत् अर्थात् व्यापक होनेके कारण वे ही 'विष्णु' कहलाते हैं। भारत! मौन, ध्यान और योगसे उनका बोध अथवा साक्षात्कार होता है, इसलिये आप उन्हें 'माधव' समझें। मधु शब्दसे प्रतिपादित पृथ्वी आदि सम्पूर्ण तत्त्वोंके उपादान एवं अधिष्ठान होनेके कारण मधुसूदन श्रीकृष्णको 'मधुहा' कहा गया है। 'कृष्' धातु सत्ता अर्थका वाचक है और 'ण' शब्द आनन्द अर्थका बोध कराता है, इन दोनों भावोंसे युक्त होनेके कारण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए

नित्य आनन्दस्वरूप श्रीविष्णु 'कृष्ण' कहलाते हैं। नित्य, अक्षय, अविनाशी एवं परम भगवद्धामका नाम पुण्डरीक है। उसमें स्थित होकर जो अक्षतभावसे विराजते हैं, वे भगवान् 'पुण्डरीकाक्ष' कहलाते हैं। (अथवा पुण्डरीक—कमलके समान उनके अक्षि—नेत्र हैं, इसलिये उनका नाम पुण्डरीकाक्ष है।) दस्युजनोंको त्रास (अर्दन या पीडा) देनेके कारण उनको 'जनार्दन' कहते हैं। वे सत्यसे कभी च्युत नहीं होते और न तत्त्वसे अलग ही होते हैं, इसलिये सद्भावके सम्बन्धसे उनका नाम 'सात्वत' है। आर्ष कहते हैं वेदको, उससे भासित होनेके कारण भगवान्‌का एक नाम 'आर्षभ' है। आर्षभके योगसे ही वे 'वृषभेक्षण' कहलाते हैं। (वृषभका अर्थ है वेद, वही ईक्षण—नेत्रके समान उनका ज्ञापक है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'वृषभेक्षण' नामकी सिद्धि होती है।) शत्रुसेनाओंपर विजय पानेवाले ये भगवान् श्रीकृष्ण किसी जन्मदाताके द्वारा जन्म ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये 'अज' कहलाते हैं। देवता स्वयं प्रकाशरूप होते हैं, अतः उत्कृष्ट रूपसे प्रकाशित होनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णको 'उदर' कहा गया है और दम (इन्द्रियसंयम) नामक गुणसे सम्पन्न होनेके कारण उनका नाम 'दाम' है। इस प्रकार दाम और उदर इन दोनों शब्दोंके संयोगसे वे 'दामोदर' कहलाते हैं। वे हर्ष अर्थात् सुखसे युक्त होनेके कारण हृषीक हैं और सुख-ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण 'ईश' कहे गये हैं। इस प्रकार वे भगवान् 'हृषीकेश' नाम धारण करते हैं। अपनी दोनों बाहुओंद्वारा भगवान् इस पृथ्वी और आकाशको धारण करते हैं, इसलिये उनका नाम 'महाबाहु' है। श्रीकृष्ण कभी नीचे गिरकर क्षीण नहीं होते, अतः (**'अधो न क्षीयते जातु'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार) 'अधोक्षज' कहलाते हैं। वे नरों (जीवात्माओं)-के अयन (आश्रय) हैं, इसलिये उन्हें 'नारायण' भी कहते हैं। वे सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथा सबके निवासस्थान हैं, इसलिये 'पुरुष' हैं और सब पुरुषोंमें उत्तम होनेके कारण उनकी 'पुरुषोत्तम' संज्ञा है। वे सत् और असत् सबकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा सर्वदा उन सबका ज्ञान रखते हैं, इसलिये उन्हें 'सर्व' कहते हैं। श्रीकृष्ण सत्यमें प्रतिष्ठित हैं और सत्य उनमें प्रतिष्ठित है। वे

भगवान् गोविन्द सत्यसे भी उत्कृष्ट सत्य हैं, अतः उनका एक नाम 'सत्य' भी है। विक्रमण (वामनावतारमें तीनों लोकोंको आक्रान्त) करनेके कारण वे भगवान् 'विष्णु' कहलाते हैं। वे सबपर विजय पानेसे 'जिष्णु', शाश्वत (नित्य) होनेसे 'अनन्त' तथा गौओं (इन्द्रियों)-के ज्ञाता और प्रकाशक होनेके कारण (**गां विन्दति**) इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'गोविन्द' कहलाते हैं। वे अपनी सत्ता-स्फूर्ति देकर असत्यको भी सत्य-सा कर देते हैं और इस प्रकार सारी प्रजाको मोहमें डाल देते हैं। निरन्तर धर्ममें तत्पर रहनेवाले उन भगवान् मधुसूदनका स्वरूप ऐसा ही है। अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण कौरवोंपर कृपा करनेके लिये यहाँ पधारनेवाले हैं।

(उद्योगपर्व ७०। १—१५)

धृतराष्ट्रके प्रति दुर्योधनके वचन

दुर्योधन बोला—पिताजी! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्णके सम्बन्धमें विदुरजी जो कुछ कहते हैं, वह सब कुछ ठीक है। जनार्दन श्रीकृष्णका कुन्तीके पुत्रोंके प्रति अटूट अनुराग है, अतः उन्हें उनकी ओरसे फोड़ा नहीं जा सकता। (उद्योगपर्व ८८। १)

दुर्योधनने जब सन्धिदूत बनकर कौरवसभामें गये हुए भगवान् श्रीकृष्णको कैद करनेका विचार किया, तब सात्यकिसे इस समाचारको सुनकर धृतराष्ट्रसे विदुर कहते हैं—

विदुर बोले—परंतप नरेश! जान पड़ता है, आपके सभी पुत्र सर्वथा कालके अधीन हो गये हैं। इसीलिये वे यह अकीर्तिकारक और असम्भव कर्म करनेको उतारू हुए हैं। सुननेमें आया है कि वे सब संगठित होकर इन पुरुषसिंह कमलनयन श्रीकृष्णको तिरस्कृत करके हठपूर्वक कैद करना चाहते हैं। ये भगवान् कृष्ण इन्द्रके छोटे भाई और दुर्धर्ष वीर हैं।

इन्हें कोई भी पकड़ नहीं सकता। इनके पास आकर सभी विरोधी जलती आगमें गिरनेवाले फतिंगोंके समान नष्ट हो जायँगे। जैसे क्रोधमें भरा हुआ सिंह हाथियोंको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार क्रुद्ध होनेपर ये भगवान् श्रीकृष्ण यदि चाहें तो समस्त विपक्षी योद्धाओंको यमलोक पहुँचा सकते हैं। परंतु ये पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण किसी प्रकार भी निन्दित अथवा पापकर्म नहीं कर सकते और न कभी धर्मसे ही पीछे हट सकते हैं। (उद्योगपर्व १३०। १८—२२)

पितामह भीष्म दुर्योधनसे कहते हैं

भीष्म बोले—तात! एक समय शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियोंका समाज जुटा था। उनमें मैंने भगवान् वासुदेवकी महिमाकी बात सुनी है। इसके सिवा जमदग्निनन्दन परशुराम, बुद्धिमान् मार्कण्डेय, व्यास तथा नारदजीसे भी सुनी है। भरतकुलभूषण! इस विषयको सुन और समझकर मैं वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको अविनाशी प्रभु परमात्मा लोकेश्वरेश्वर और सर्वशक्तिमान् नारायण जानता हूँ। सम्पूर्ण जगत्के पिता ब्रह्मा जिनके पुत्र हैं, वे भगवान् वासुदेव मनुष्योंके लिये आराधनीय तथा पूजनीय कैसे नहीं हैं? तात! वेदोंके पारंगत विद्वान् महर्षियोंने तथा मैंने तुमको मना किया था कि तुम धनुर्धर भगवान् वासुदेवके साथ विरोध न करो, पाण्डवोंके साथ लोहा न लो, परंतु मोहवश तुमने इन बातोंका कोई मूल्य नहीं समझा। मैं समझता हूँ, तुम कोई क्रूर राक्षस हो, क्योंकि राक्षसोंके ही समान तुम्हारी बुद्धि सदा तमोगुणसे आच्छन्न रहती है। तुम भगवान् गोविन्द तथा पाण्डुनन्दन धनंजयसे द्वेष करते हो। वे दोनों ही नर और नारायण देव हैं। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मनुष्य उनसे द्वेष कर सकता है? राजन्! इसलिये तुम्हें यह बता रहा हूँ कि ये भगवान् श्रीकृष्ण सनातन, अविनाशी, सर्वलोकस्वरूप, नित्य शासक, धरणीधर एवं अविचल हैं। वे चराचर-गुरु भगवान् श्रीहरि तीनों लोकोंको धारण करते हैं। ये ही योद्धा हैं, ये ही विजय हैं और ये ही विजयी हैं। सबके कारणभूत

परमेश्वर भी ये ही हैं। राजन्! ये श्रीहरि सर्वस्वरूप और तम एवं रागसे रहित हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। उनके माहात्म्य-योगसे तथा आत्मस्वरूप योगसे समस्त पाण्डव सुरक्षित हैं। राजन्! इसीलिये इनकी विजय होगी। वे पाण्डवोंको सदा कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करते हैं, युद्धमें बल देते हैं और भयसे नित्य उनकी रक्षा करते हैं। भारत! जिनके विषयमें तुम मुझसे पूछ रहे हो, वे सनातन देवता सर्वगुह्यमय कल्याणस्वरूप परमात्मा ही 'वासुदेव' नामसे जानने योग्य हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुभ लक्षणसम्पन्न शूद्र—ये सभी नित्य तत्पर होकर अपने कर्मोंद्वारा इन्हींकी सेवा-पूजा करते हैं। द्वापरयुगके अन्त और कलियुगके आदिमें संकर्षणने श्रीकृष्णोपासनाकी विधिका आश्रय ले इन्हींकी महिमाका गान किया है। ये ही श्रीकृष्णनामसे विख्यात होकर इस लोककी रक्षा करते हैं। ये भगवान् वासुदेव ही युग-युगमें देवलोक, मर्त्यलोक तथा समुद्रसे घिरी हुई द्वारका-नगरीका निर्माण करते हैं और ये ही बारम्बार मनुष्यलोकमें अवतार ग्रहण करते हैं।

(भीष्मपर्व ६६। २६—४२)

दुर्योधनके प्रति पितामह भीष्मके वचन

भीष्मजीने कहा—भरतश्रेष्ठ! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण वास्तवमें महान् हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके भी देवता हैं। कमलनयन श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। मार्कण्डेयजी भगवान् गोविन्दके विषयमें अत्यन्त अद्भुत बातें कहते हैं। वे भगवान् ही सर्वभूतमय हैं और वे ही सबके आत्मस्वरूप महात्मा पुरुषोत्तम हैं। सृष्टिके आरम्भमें इन्हीं परमात्माने जल, वायु और तेज—इन तीन भूतों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि की थी। सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर इन भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीदेवीकी सृष्टि करके जलमें शयन किया। ये महात्मा पुरुषोत्तम सर्वतेजोमय देवता योगशक्तिसे उस जलमें सोये। इन अच्युतने अपने मुखसे अग्निकी, प्राणसे वायुकी तथा मनसे सरस्वतीदेवी और वेदोंकी रचना

की। इन्होंने ही सर्गके आरम्भमें सम्पूर्ण लोकों तथा ऋषियोंसहित देवताओंकी रचना की थी। ये ही प्रलयके अधिष्ठान और मृत्युस्वरूप हैं। प्रजाकी उत्पत्ति और विनाश इन्हींसे होते हैं। ये धर्मज्ञ, वरदाता, सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले तथा धर्मस्वरूप हैं। ये ही कर्ता, कार्य, आदिदेव तथा स्वयं सर्वसमर्थ हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी सृष्टि भी पूर्वकालमें इन्हींके द्वारा हुई है। इन जनार्दनने ही दोनों संध्याओं, दसों दिशाओं, आकाश तथा नियमोंकी रचना की है। महात्मा अविनाशी प्रभु गोविन्दने ही ऋषियोंकी तथा तपस्याकी रचना की है। जगत्स्त्रष्टा प्रजापतिको भी इन्होंने ही उत्पन्न किया है। इन पूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णने पहले सम्पूर्ण भूतोंके अग्रज संकर्षणको प्रकट किया, उनसे सनातन देवाधिदेव नारायणका प्रादुर्भाव हुआ। नारायणकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ। सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके स्थानभूत उस कमलसे पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीसे ये सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं। जो सम्पूर्ण भूतोंको तथा पर्वतोंसहित इस पृथ्वीको धारण करते हैं, जिन्हें विश्वरूपी अनन्त देव तथा शेष कहा गया है, उन्हें भी इन परमात्माने ही उत्पन्न किया है। ब्राह्मणलोग ध्यानयोगके द्वारा इन्हीं परम तेजस्वी वासुदेवका ज्ञान प्राप्त करते हैं।

जलशायी नारायणके कानकी मैलसे महान् असुर मधुका प्राकट्य हुआ था। वह मधु बड़ा ही उग्र स्वभावका तथा क्रूरकर्मा था। उसने अत्यन्त भयंकर बुद्धिका आश्रय लिया था। इसलिये ब्रह्माजीका समादर करते हुए भगवान् पुरुषोत्तमने मधुको मार डाला था। तात! मधुका वध करनेके कारण ही देवता, दानव, मनुष्य तथा ऋषिगण श्रीजनार्दनको 'मधुसूदन' कहते हैं। ये ही भगवान् समय-समयपर वाराह, नृसिंह और वामनके रूपमें प्रकट हुए हैं। ये श्रीहरि ही समस्त प्राणियोंके पिता और माता हैं। इन कमलनयन भगवान्से बढ़कर दूसरा कोई तत्त्व न हुआ है, न होगा। राजन्! इन्होंने अपने मुखसे ब्राह्मणों, दोनों भुजाओंसे क्षत्रियों, जंघासे वैश्यों और चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया है। जो मनुष्य तपस्यामें तत्पर हो संयम-नियमका पालन करते हुए अमावास्या और पूर्णिमाको

समस्त देहधारियोंके आश्रय ब्रह्म एवं योगस्वरूप भगवान् केशवकी आराधना करता है, वह परम पदको प्राप्त कर लेता है। नरेश्वर! सम्पूर्ण लोकोंके पितामह भगवान् श्रीकृष्ण परम तेज हैं। मुनिजन इन्हें 'हृषीकेश' कहते हैं। इस प्रकार इन भगवान् गोविन्दको तुम आचार्य, पिता और गुरु समझो। भगवान् श्रीकृष्ण जिनके ऊपर प्रसन्न हो जायँ, वह अक्षय लोकोंपर विजय पा जाता है। जो मनुष्य भयके समय इन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेता है और सर्वथा इस स्तुतिका पाठ करता है, वह सुखी एवं कल्याणका भागी होता है। जो मानव भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते। भगवान् जनार्दन महान् भयमें निमग्न उन मनुष्योंकी सदा रक्षा करते हैं। भरतवंशी नरेश! इस बातको अच्छी तरह समझकर राजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण हृदयसे योगोंके स्वामी सर्वसमर्थ, जगदीश्वर एवं महात्मा भगवान् केशवकी शरण ली है।

(भीष्मपर्व ६८। २—२५)

संजयके प्रति धृतराष्ट्रके वचन

धृतराष्ट्र बोले—संजय! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य कर्मोंका वर्णन सुनो। भगवान् गोविन्दने जो-जो कार्य किये हैं, वैसा दूसरा कोई पुरुष कदापि नहीं कर सकता। संजय! बाल्यावस्थामें ही जब कि वे गोपकुलमें पल रहे थे, महात्मा श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंके बल और पराक्रमको तीनों लोकोंमें विख्यात कर दिया। यमुनाके तटवर्ती वनमें उच्चैःश्रवाके समान बलशाली और वायुके समान वेगवान् अश्वराज केशी रहता था। उसे श्रीकृष्णने मार डाला। इसी प्रकार एक भयंकर कर्म करनेवाला दानव वहाँ बैलका रूप धारण करके रहता था, जो गौओंके लिये मृत्युके समान प्रकट हुआ था। उसे भी श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें अपने हाथोंसे ही मार डाला। तत्पश्चात् कमलनयन श्रीकृष्णने प्रलम्ब, नरकासुर, जृम्भासुर, पीठ नामक महान् असुर और यमराजसदृश मुरका भी संहार किया। इसी प्रकार श्रीकृष्णने पराक्रम करके ही जरासंधके द्वारा सुरक्षित महातेजस्वी कंसको उसके

गणोंसहित रणभूमिमें मार गिराया। शत्रुहन्ता श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ जाकर युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले बलवान्, वेगवान्, सम्पूर्ण अक्षौहिणी सेनाओंके अधिपति, भोजराज कंसके मझले भाई शूरसेन देशके राजा सुनामाको समरमें सेनासहित दग्ध कर डाला। पत्नीसहित श्रीकृष्णने परम क्रोधी ब्रह्मर्षि दुर्वासाकी आराधना की। अत: उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें बहुत-से वर दिये। कमलनयन वीर श्रीकृष्णने स्वयंवरमें गान्धारराजकी पुत्रीको प्राप्त करके समस्त राजाओंको जीतकर उसके साथ विवाह किया। उस समय अच्छी जातिके घोड़ोंकी भाँति श्रीकृष्णके वैवाहिक रथमें जुते हुए वे असहिष्णु राजालोग कोड़ोंकी मारसे घायल कर दिये गये थे।

जनार्दन श्रीकृष्णने समस्त अक्षौहिणी सेनाओंके अधिपति महाबाहु जरासंधको उपायपूर्वक दूसरे योद्धा (भीमसेन)-के द्वारा मरवा दिया। बलवान् श्रीकृष्णने राजाओंकी सेनाके अधिपति पराक्रमी चेदिराज शिशुपालको अग्र-पूजनके समय विवाद करनेके कारण पशुकी भाँति मार डाला। तत्पश्चात् माधवने आकाशमें स्थित रहनेवाले सौभ नामक दुर्धर्ष दैत्यनगरको, जो राजा शाल्वद्वारा सुरक्षित था, समुद्रके बीच पराक्रम करके मार गिराया। उन्होंने रणक्षेत्रमें अंग, वंग, कलिंग, मगध, काशि, कोसल, वत्सल, गर्ग, करूष तथा पौण्ड्र आदि देशोंपर विजय पायी थी। संजय! इसी प्रकार कमलनयन श्रीकृष्णने अवन्ती, दक्षिण प्रान्त, पर्वतीय देश, दशेरक, काश्मीर, औरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज, वाटधान, चोल, पाण्ड्य, त्रिगर्त, मालव, अत्यन्त दुर्जय दरद आदि देशोंके योद्धाओंको तथा नाना दिशाओंसे आये हुए खशों, शकों और अनुयायियोंसहित कालयवनको भी जीत लिया। पूर्वकालमें श्रीकृष्णने जल-जन्तुओंसे भरे हुए समुद्रमें प्रवेश करके जलके भीतर निवास करनेवाले वरुण देवताको युद्धमें परास्त किया। इसी प्रकार हृषीकेशने पातालनिवासी पंचजन नामक दैत्यको युद्धमें मारकर दिव्य पांचजन्य शंख प्राप्त किया। खाण्डव वनमें अर्जुनके साथ अग्निदेवको संतुष्ट करके महाबली श्रीकृष्णने दुर्धर्ष आग्नेय-अस्त्र—चक्रको प्राप्त किया

था। वीर श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हो अमरावतीपुरीमें जाकर वहाँके निवासियोंको भयभीत करके महेन्द्र-भवनसे पारिजात वृक्ष उठा ले आये। उनके पराक्रमको इन्द्र अच्छी तरह जानते थे, इसलिये उन्होंने वह सब चुपचाप सह लिया। राजाओंमेंसे किसीको भी मैंने ऐसा नहीं सुना है, जिसे श्रीकृष्णने जीत न लिया हो। संजय! उस दिन मेरी सभामें कमलनयन श्रीकृष्णने जो महान् आश्चर्य प्रकट किया था, उसे इस संसारमें उनके सिवा दूसरा कौन कर सकता है? मैंने प्रसन्न होकर भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्णके उस ईश्वरीय रूपका जो दर्शन किया, वह सब मुझे आज भी अच्छी तरह स्मरण है। मैंने उन्हें प्रत्यक्षकी भाँति जान लिया था। संजय! बुद्धि और पराक्रमसे युक्त भगवान् हृषीकेशके कर्मोंका अन्त नहीं जाना जा सकता।

(द्रोणपर्व ११। १—२६)

ऋषि-मुनियोंके पूछनेपर उनके प्रति भगवान् महेश्वरके वचन

महेश्वरने कहा—मुनिवरो! भगवान् सनातन पुरुष श्रीकृष्ण ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। वे श्रीहरि जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान श्याम कान्तिसे युक्त हैं। बिना बादलके आकाशमें उदित सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनकी भुजाएँ दस हैं, वे महान् तेजस्वी हैं, देवद्रोहियोंका नाश करनेवाले श्रीवत्सभूषित भगवान् हृषीकेश सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। ब्रह्माजी उनके उदरसे और मैं उनके मस्तकसे प्रकट हुआ हूँ। उनके सिरके केशोंसे नक्षत्रों और ताराओंका प्रादुर्भाव हुआ है। रोमावलियोंसे देवता और असुर प्रकट हुए हैं। समस्त ऋषि और सनातन लोक उनके श्रीविग्रहसे उत्पन्न हुए हैं। वे श्रीहरि स्वयं ही सम्पूर्ण देवताओंके गृह और ब्रह्माजीके भी निवासस्थान हैं। इस सम्पूर्ण पृथ्वीके स्रष्टा और तीनों लोकोंके स्वामी भी वे ही हैं। वे ही चराचर प्राणियोंका संहार भी करते हैं। वे देवताओंमें श्रेष्ठ, देवताओंके रक्षक, शत्रुओंको संताप देनेवाले, सर्वज्ञ, सबमें ओत-प्रोत, सर्वव्यापक तथा

सब ओर मुखवाले हैं। वे ही परमात्मा, इन्द्रियोंके प्रेरक और सर्वव्यापी महेश्वर हैं। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे ही सनातन, मधुसूदन और गोविन्द आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। सज्जनोंको आदर देनेवाले वे भगवान् श्रीकृष्ण महाभारत-युद्धमें समस्त राजाओंका संहार करायेंगे। वे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वीपर मानव-शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं। उन भगवान् त्रिविक्रमकी शक्ति और सहायताके बिना सम्पूर्ण देवता भी कोई कार्य नहीं कर सकते। संसारमें नेताके बिना देवता अपना कोई भी कार्य करनेमें असमर्थ हैं और ये भगवान् श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके नेता हैं। इसलिये समस्त देवता इनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। देवताओंकी रक्षा और उनके कार्यसाधनमें संलग्न रहनेवाले वे भगवान् वासुदेव ब्रह्मस्वरूप हैं। ये ही ब्रह्मर्षियोंको सदा शरण देते हैं। ब्रह्माजी इनके शरीरके भीतर अर्थात् इनके गर्भमें बड़े सुखके साथ रहते हैं। सदा सुखी रहनेवाला मैं (शिव) भी इनके श्रीविग्रहके भीतर सुखपूर्वक निवास करता हूँ। सम्पूर्ण देवता इनके श्रीविग्रहमें सुखपूर्वक निवास करते हैं। ये कमलनयन श्रीहरि अपने गर्भ (वक्षःस्थल)-में लक्ष्मीको निवास देते हैं। लक्ष्मीके साथ ही ये रहते हैं। शार्ङ्गधनुष, सुदर्शनचक्र और नन्दक नामक खड्ग—इनके आयुध हैं। इनकी ध्वजामें सम्पूर्ण नागोंके शत्रु गरुड़का चिह्न सुशोभित है।

ये उत्तम शील, शम, दम, पराक्रम, वीर्य, सुन्दर शरीर, उत्तम दर्शन, सुडौल आकृति, धैर्य, सरलता, कोमलता, रूप और बल आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। सब प्रकारके दिव्य और अद्भुत अस्त्र-शस्त्र इनके पास सदा मौजूद रहते हैं। ये योगमायासे सम्पन्न और हजारों नेत्रोंवाले हैं। इनका हृदय विशाल है। ये अविनाशी, वीर, मित्रजनोंके प्रशंसक, ज्ञाति एवं बन्धु-बान्धवोंके प्रति क्षमाशील, अहंकाररहित, ब्राह्मणभक्त, वेदोंका उद्धार करनेवाले, भयातुर पुरुषोंका भय दूर करनेवाले और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले हैं। ये समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले, दीन-दुःखियोंके पालनमें तत्पर, शास्त्रज्ञानसम्पन्न,

भगवान्, सर्वभूतवत्सल, शरणमें आये हुए शत्रुओंको भी वर देनेवाले, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, नीतिमान्, ब्रह्मवादी और जितेन्द्रिय हैं। परम बुद्धिसे सम्पन्न भगवान् गोविन्द यहाँ देवताओंकी उन्नतिके लिये प्रजापतिके शुभमार्गपर स्थित हो मनुके धर्मसंस्कृत कुलमें अवतार लेंगे। महात्मा मनुके वंशमें मनुपुत्र अंग नामक राजा होंगे। उनसे अन्तर्धामा नामवाले पुत्रका जन्म होगा। अन्तर्धामासे अनिन्द्य प्रजापति हविर्धामाकी उत्पत्ति होगी। हविर्धामाके पुत्र महाराज प्राचीनबर्हि होंगे। प्राचीनबर्हिके प्रचेता आदि दस पुत्र होंगे। उन दसों प्रचेताओंसे इस जगत्में प्रजापति दक्षका प्रादुर्भाव होगा। दक्षकन्या अदितिसे आदित्य (सूर्य) उत्पन्न होंगे। सूर्यसे मनु उत्पन्न होंगे। मनुके वंशमें इला नामक कन्या होगी, जो आगे चलकर सुद्युम्न नामक पुत्रके रूपमें परिणत हो जायगी। कन्यावस्थामें बुधसे समागम होनेपर उससे पुरूरवाका जन्म होगा। पुरूरवासे आयु नामक पुत्रकी उत्पत्ति होगी। आयुके पुत्र नहुष और नहुषके ययाति होंगे। ययातिसे महान् बलशाली यदु होंगे। यदुसे क्रोष्टाका जन्म होगा। क्रोष्टासे महान् पुत्र वृजिनीवान् होंगे। वृजिनीवान्से वीर उषंगुका जन्म होगा। उषंगुका पुत्र शूरवीर चित्ररथ होगा। उसका छोटा पुत्र शूर नामसे विख्यात होगा। वे सभी यदुवंशी विख्यात पराक्रमी, सदाचार और सद्गुणसे सुशोभित, यज्ञशील और विशुद्ध आचार-विचारवाले होंगे। इनका कुल ब्राह्मणोंद्वारा सम्मानित होगा। उस कुलमें महापराक्रमी, महायशस्वी और दूसरोंको सम्मान देनेवाले क्षत्रियशिरोमणि शूर अपने वंशका विस्तार करनेवाले 'वसुदेव' नामक पुत्रको जन्म देंगे, जिसका दूसरा नाम आनकदुन्दुभि होगा। उन्हींके पुत्र चार भुजाधारी भगवान् वासुदेव होंगे। भगवान् वासुदेव दानी, ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाले, ब्रह्मभूत और ब्राह्मण-प्रिय होंगे। वे यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण मगधराज जरासंधकी कैदमें पड़े हुए राजाओंको बन्धनसे छुड़ायेंगे।

वे पराक्रमी श्रीहरि पर्वतकी कन्दरा (राजगृह) में राजा जरासन्धको जीतकर समस्त राजाओंके द्वारा उपहृत रत्नोंसे सम्पन्न होंगे। वे इस

भूमण्डलमें अपने बल-पराक्रमद्वारा अजेय होंगे। विक्रमसे सम्पन्न तथा समस्त राजाओंके भी राजा होंगे। नीतिवेत्ता भगवान् श्रीकृष्ण शूरसेन देश (मथुरामण्डल)-में अवतीर्ण होकर वहाँसे द्वारकापुरीमें जाकर रहेंगे और समस्त राजाओंको जीतकर सदा इस पृथ्वीदेवीका पालन करेंगे। आपलोग उन्हीं भगवान्‌की शरण लेकर अपनी वाङ्मयी मालाओं तथा श्रेष्ठ पूजनोपचारोंसे सनातन ब्रह्मकी भाँति उनका यथोचित पूजन करें। जो मेरा और पितामह ब्रह्माजीका दर्शन करना चाहता हो, उसे प्रतापी भगवान् वासुदेवका दर्शन करना चाहिये। तपोधनो! उनका दर्शन हो जानेपर मेरा ही दर्शन हो गया अथवा उनके दर्शनसे देवेश्वर ब्रह्माजीका दर्शन हो गया ऐसे समझो, इस विषयमें मुझे कोई विचार नहीं करना है अर्थात् संदेह नहीं है। जिसपर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे, उसके ऊपर ब्रह्मा आदि देवताओंका समुदाय प्रसन्न हो जायगा। मानवलोकमें जो भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेगा, उसे कीर्ति, विजय तथा उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होगी। इतना ही नहीं, वह धर्मोंका उपदेश देनेवाला साक्षात् धर्माचार्य एवं धर्मफलका भागी होगा। अतः धर्मात्मा पुरुषोंको चाहिये कि वे सदा उत्साहित रहकर देवेश्वर भगवान् वासुदेवको नमस्कार करें। उन सर्वव्यापी परमेश्वरकी पूजा करनेसे परम धर्मकी सिद्धि होगी। वे महान् तेजस्वी देवता हैं। उन पुरुषसिंह श्रीकृष्णने प्रजाका हित करनेकी इच्छासे धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये करोड़ों ऋषियोंकी सृष्टि की है। भगवान्‌के उत्पन्न किये हुए वे सनत्कुमार आदि ऋषि गन्धमादन पर्वतपर सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं। अतः द्विजवरो! उन प्रवचनकुशल, धर्मज्ञ वासुदेवको सदा प्रणाम करना चाहिये। वे भगवान् नारायण हरि देवलोकमें सबसे श्रेष्ठ हैं। जो उनकी वन्दना करता है, उसकी वे भी वन्दना करते हैं। जो उनका आदर करता है, उसका वे भी आदर करते हैं। इसी प्रकार अर्चित होनेपर वे भी अर्चना करते और पूजित या प्रशंसित होनेपर वे भी पूजा या प्रशंसा करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! जो प्रतिदिन उनका दर्शन करता है, उसकी ओर वे भी कृपादृष्टि करते हैं। जो उनका

आश्रय लेता है, उसके हृदयमें वे भी आश्रय लेते हैं, तथा जो उनकी पूजा करता है, उसकी वे भी सदा पूजा करते हैं। उन प्रशंसनीय आदिदेवता भगवान् महाविष्णुका यह उत्तम व्रत है, जिसका साधुपुरुष सदा आचरण करते आये हैं। वे सनातन देवता हैं, अतः इस त्रिभुवनमें देवता भी सदा उन्हींकी पूजा करते हैं। जो उनके अनन्य भक्त हैं, वे अपने भजनके अनुरूप ही निर्भय पद प्राप्त करते हैं। सबको चाहिये कि मन, वाणी और कर्मसे सदा उन भगवान्‌को प्रणाम करें और यत्नपूर्वक उपासना करके उन देवकीनन्दनका दर्शन करें।

मुनिवरो! यह मैंने आपलोगोंको उत्तम मार्ग बता दिया है। उन भगवान् वासुदेवका सब प्रकारसे दर्शन कर लेनेपर सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंका दर्शन करना हो जायगा। मैं भी महावराहरूप धारण करनेवाले उन सर्वलोकपितामह जगदीश्वरको नित्य प्रणाम करता हूँ। हम सब देवता उनके श्रीविग्रहमें निवास करते हैं। अतः उनका दर्शन करनेसे तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और शिव)-का दर्शन हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। उनके बड़े भाई कैलासकी पर्वतमालाओंके समान श्वेत कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले हलधर और बलरामके नामसे विख्यात होंगे। पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग ही बलरामके रूपमें अवतीर्ण होंगे। बलदेवजीके रथपर तीन शिखाओंसे युक्त दिव्य सुवर्णमय तालवृक्ष ध्वजके रूपमें सुशोभित होगा। सर्वलोकेश्वर महाबाहु बलरामजीका मस्तक बड़े-बड़े फनवाले विशालकाय सर्पोंसे घिरा हुआ होगा। उनके चिन्तन करते ही सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र-शस्त्र उन्हें प्राप्त हो जायँगे। अविनाशी भगवान् श्रीहरि ही अनन्त शेषनाग कहे गये हैं। पूर्वकालमें देवताओंने गरुड़जीसे यह अनुरोध किया कि 'आप हमें भगवान् शेषका अन्त दिखा दीजिये।' तब कश्यपके बलवान् पुत्र गरुड़ अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उन परमात्मदेव अनन्तका अन्त न देख सके। वे भगवान् शेष बड़े आनन्दके साथ सर्वत्र विचरते हैं और अपने विशाल शरीरसे पृथ्वीको आलिंगन-पाशमें बाँधकर पाताललोकमें निवास करते हैं। जो भगवान् विष्णु हैं, वे ही इस पृथ्वीको धारण करनेवाले

भगवान् अनन्त हैं। जो बलराम हैं वे ही श्रीकृष्ण हैं, जो श्रीकृष्ण हैं वे ही भूमिधर बलराम हैं। वे दोनों दिव्य रूप और दिव्य पराक्रमसे सम्पन्न पुरुषसिंह बलराम और श्रीकृष्ण क्रमशः हल एवं चक्र धारण करनेवाले हैं। तुम्हें उन दोनोंका दर्शन एवं सम्मान करना चाहिये। तपोधनो! आपलोगोंपर अनुग्रह करके मैंने भगवान्‌का पवित्र माहात्म्य इसलिये बताया है कि आप प्रयत्नपूर्वक उन यदुकुलतिलक श्रीकृष्णकी पूजा करें। (अनुशासनपर्व १४७। २—६२)

युधिष्ठिरके प्रति शर-शय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्मके वचन

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! ये महान् व्रतधारी परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण-पूजासे होनेवाले लाभका प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं, अतः वही तुमसे इस विषयकी सारी बातें बतायेंगे। आज मेरा बल, मेरे कान, मेरी वाणी, मेरा मन और मेरे दोनों नेत्र तथा मेरा विशुद्ध ज्ञान भी सब एकत्रित हो गये हैं। अतः जान पड़ता है कि अब मेरा शरीर छूटनेमें अधिक विलम्ब नहीं है। आज सूर्यदेव अधिक तेजीसे नहीं चलते हैं। पार्थ! पुराणोंमें जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके (अलग अलग) धर्म बतलाये गये हैं तथा सब वर्णोंके लोग जिस जिस धर्मकी उपासना करते हैं, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब जो कुछ बाकी रह गया हो उसकी भगवान् श्रीकृष्णसे शिक्षा लो। इन श्रीकृष्णका जो स्वरूप है और जो इनका पुरातन बल है, उसे ठीक-ठीक मैं जानता हूँ। कौरवराज! भगवान् श्रीकृष्ण अप्रमेय हैं, अतः तुम्हारे मनमें संदेह होनेपर यही तुम्हें धर्मका उपदेश करेंगे। श्रीकृष्णने ही इस पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है। इन्हींके शरीरसे पृथ्वीका प्रादुर्भाव हुआ है। यही भयंकर बलवाले वराहके रूपमें प्रकट हुए थे तथा इन्हीं पुराणपुरुषने पर्वतों और दिशाओंको उत्पन्न किया है। अन्तरिक्ष, स्वर्ग, चारों दिशाएँ तथा चारों कोण—ये सब भगवान् श्रीकृष्णसे नीचे हैं। इन्हींसे सृष्टिकी परम्परा प्रचलित हुई है तथा इन्होंने ही इस प्राचीन विश्वका निर्माण किया है।

कुन्तीनन्दन! सृष्टिके आरम्भमें इनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ और उसीके भीतर अमित तेजस्वी ब्रह्माजी स्वतः प्रकट हुए। जिन्होंने उस घोर अन्धकारका नाश किया है, जो समुद्रको भी डाँट बताता हुआ सब ओर व्याप्त हो रहा था(अर्थात् जो अगाध और अपार था)। पार्थ! सत्ययुगमें श्रीकृष्ण सम्पूर्ण धर्मरूपसे विराजमान थे, त्रेतामें पूर्ण ज्ञान या विवेकरूपमें स्थित थे, द्वापरमें बलरूपमें स्थित हुए थे और कलियुगमें अधर्मरूपसे इस पृथ्वीपर आयेंगे (अर्थात् उस समय अधर्म ही बलवान् होगा)। इन्होंने ही प्राचीनकालमें दैत्योंका संहार किया और ये ही दैत्यसम्राट् बलिके रूपमें प्रकट हुए।

ये भूतभावन प्रभु ही सब कुछ हैं, भूत और भविष्य इनके ही स्वरूप हैं तथा ये ही इस सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले हैं। जब धर्मका ह्रास होने लगता है, तब ये शुद्ध अन्तःकरणवाले श्रीकृष्ण देवताओं तथा मनुष्योंके कुलमें अवतार लेकर स्वयं धर्ममें स्थित हो उसका आचरण करते हुए उसकी स्थापना तथा पर और अपर लोकोंकी रक्षा करते हैं। कुन्तीनन्दन ! ये त्याज्य वस्तुका त्याग करके असुरोंका वध करनेके लिये स्वयं कारण बनते हैं। कार्य, अकार्य और कारण सब इन्हींके स्वरूप हैं। ये नारायणदेव ही भूत, भविष्य और वर्तमान कालमें किये जानेवाले कर्मरूप हैं। तुम इन्हींको राहु, चन्द्रमा और इन्द्र समझो। ये श्रीकृष्ण ही विश्वकर्मा, विश्वरूप, विश्वभोक्ता, विश्व-विधाता और विश्वविजेता हैं। ये ही एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें रक्तसे भरा खप्पर लिये विकराल रूप धारण करते हैं। अपने नाना प्रकारके कर्मोंसे जगत्में विख्यात हुए श्रीकृष्णकी ही सब लोग स्तुति करते हैं। सैकड़ों गन्धर्व, अप्सराएँ तथा देवता सदा इनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। राक्षस भी इनसे सम्मति लिया करते हैं। एकमात्र ये ही धनके रक्षक और विजयके अभिलाषी हैं। यज्ञमें स्तोतालोग इन्हींकी स्तुति करते हैं। सामगान करनेवाले विद्वान् रथन्तर साममें इन्हींके गुण गाते हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मण वेदके मन्त्रोंसे इन्हींका स्तवन करते हैं और यजुर्वेदी अध्वर्यु यज्ञमें इन्हींको हविष्यका भाग देते हैं। भारत! इन्होंने ही पूर्वकालमें ब्रह्मरूप

पुरातन गुहामें प्रवेश करके इस पृथ्वीका जलमें प्रलय होना देखा है। इन सृष्टिकर्म करनेवाले श्रीकृष्णने दैत्यों, दानवों तथा नागोंको विक्षुब्ध करके इस पृथ्वीका रसातलसे उद्धार किया है। व्रजकी रक्षाके लिये गोवर्धन पर्वत उठानेके समय इन्द्र आदि देवताओंने इन्हींकी स्तुति की थी।

भरतनन्दन! ये एकमात्र श्रीकृष्ण ही समस्त पशुओं (जीवों)-के अधिपति हैं। इन्हींको नाना प्रकारके भोजन अर्पित किये जाते हैं। युद्धमें ये ही विजय दिलानेवाले माने जाते हैं। पृथ्वी, आकाश और स्वर्गलोक सभी इन सनातन पुरुष श्रीकृष्णके वशमें रहते हैं। इन्होंने कुम्भमें देवताओं (मित्र और वरुण)-का वीर्य स्थापित किया था, जिससे महर्षि वसिष्ठकी उत्पत्ति हुई बतायी जाती है। ये ही सर्वत्र विचरनेवाले वायु हैं, तीव्रगामी अश्व हैं, सर्वव्यापी हैं, अंशुमाली सूर्य और आदिदेवता हैं। इन्होंने ही समस्त असुरोंपर विजय पायी तथा इन्होंने ही अपने तीन पदोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया था। ये श्रीकृष्ण सम्पूर्ण देवताओं, पितरों और मनुष्योंके आत्मा हैं। इन्हींको यज्ञवेत्ताओंका यज्ञ कहा गया है। ये ही दिन और रातका विभाग करते हुए सूर्यरूपमें उदित होते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन इन्हींके दो मार्ग हैं। इन्हींके ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलमें पृथ्वीको प्रकाशित करनेवाली किरणें फैलती हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मण इन्हींकी सेवा करते हैं और इन्हींके प्रकाशका सहारा लेकर सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं।

ये यज्ञकर्ता श्रीकृष्ण प्रत्येक मासमें यज्ञ करते हैं। प्रत्येक यज्ञमें वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हींके गुण गाते हैं। ये ही तीन नाभियों, तीनों धर्मों और सात अश्वोंसे युक्त इस संवत्सरचक्रको धारण करते हैं। वीर कुन्तीनन्दन! ये महातेजस्वी और सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले सर्वसिंह श्रीकृष्ण अकेले ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करते हैं। तुम इन श्रीकृष्णको ही अन्धकारनाशक सूर्य और समस्त कार्योंका कर्ता समझो। इन्हीं महात्मा वासुदेवने एक बार अग्निस्वरूप होकर खाण्डव वनकी सूखी लकड़ियोंमें व्याप्त हो पूर्णतः तृप्तिका अनुभव किया था। ये सर्वव्यापी प्रभु ही राक्षसों और नागोंको जीतकर सबको

अग्निमें ही होम देते हैं। इन्होंने ही अर्जुनको श्वेत अश्व प्रदान किया था। इन्होंने समस्त अश्वोंकी सृष्टि की थी। ये ही संसाररूपी रथको बाँधनेवाले बन्धन हैं। सत्त्व, रज और तम— ये तीन गुण ही इस रथके चक्र हैं, ऊर्ध्व, मध्य और अधः—जिसकी गति है, काल, अदृष्ट, इच्छा और संकल्प—ये चार जिसके घोड़े हैं, सफेद, काला और लाल रंगका त्रिविध कर्म ही जिसकी नाभि है, वह संसार-रथ इन श्रीकृष्णके ही अधिकारमें है। पाँचों भूतोंके आश्रयरूप श्रीकृष्णने ही आकाशकी सृष्टि की है। इन्होंने ही पृथ्वी, स्वर्गलोक और अन्तरिक्षकी रचना की है। अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी इन हृषीकेशने ही वन और पर्वतोंको उत्पन्न किया है। इन्हीं वासुदेवने वज्रका प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए इन्द्रको मार डालनेकी इच्छासे कितनी ही सरिताओंको लाँघा और उन्हें परास्त किया था। ये ही महेन्द्र-रूप हैं। ब्राह्मण बड़े-बड़े यज्ञोंमें सहस्रों ऋचाओंद्वारा एकमात्र इन्हींकी स्तुति करते हैं। राजन्! इन श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो अपने घरमें महातेजस्वी दुर्वासाको ठहरा सके। इनको ही अद्वितीय पुरातन ऋषि कहते हैं। ये ही विश्वनिर्माता हैं और अपने स्वरूपसे ही अनेकों पदार्थोंकी सृष्टि करते रहते हैं। ये देवताओंके देवता होकर भी वेदोंका अध्ययन करते और प्राचीन विधियोंका आश्रय लेते हैं। लौकिक और वैदिक कर्मका जो फल है, वह सब श्रीकृष्ण ही हैं, ऐसा विश्वास करो। ये ही सम्पूर्ण लोकोंकी शुक्लज्योति हैं तथा तीनों लोक, तीनों लोकपाल, त्रिविध अग्नि, तीनों व्याहृतियाँ और सम्पूर्ण देवता भी देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। संवत्सर, ऋतु, पक्ष, दिन-रात, कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त, लव और क्षण—इन सबको श्रीकृष्णका ही स्वरूप समझो।

पार्थ! चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, अमावास्या, पौर्णमासी, नक्षत्रयोग तथा ऋतु—इन सबकी उत्पत्ति श्रीकृष्णसे ही हुई है। रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, प्रजापति, देवमाता अदिति और सप्तर्षि—ये सब-के-सब श्रीकृष्णसे ही प्रकट हुए हैं। ये विश्वरूप श्रीकृष्ण ही वायुरूप धारण करके संसारको चेष्टा प्रदान करते हैं। अग्निरूप होकर सबको भस्म करते हैं, जलका रूप धारण करके

भगवान् श्रीकृष्णके कुछ मन्त्र

भगवान् श्रीकृष्णके तथा श्रीराधाजीके (अनुष्ठानकी दृष्टिसे) मन्त्र, जपसंख्या और फल अगले पृष्ठपर दिये जा रहे हैं। ये सभी ध्यान-मन्त्र श्रद्धा-विश्वासपूर्वक निष्कामभावसे सेवन किये जानेपर अन्तःकरणकी शुद्धि करके परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं और प्रेमकी प्राप्तिके लिये इनका सेवन किया जाय तो ये भगवान्‌के दुर्लभ दिव्य प्रेम-लाभमें बड़ी सहायता करते हैं। सकाम अनुष्ठानके लिये ही संख्या लिखी गयी है। निष्काम तथा प्रेम-प्राप्तिमें कोई नियत संख्या नहीं है, वहाँ तो ध्यान-जप चालू ही रहने चाहिये।

मन्त्रोंकी तालिका

क्रम	मन्त्र	संख्या		फल
१	**ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।**	१.५	लाख	बृहस्पतिके समान ज्ञान-प्राप्ति।
२	''	१	''	शत्रुभय आदि विपत्तियोंसे रक्षा।
३	''	१	''	सर्वकार्य-सिद्धि।
४	''	२१	''	संसार-सागरसे सद्योमुक्ति।
५	''	१	''	संगीतमें निपुणता।
६	''	१	''	विज्ञता-प्राप्ति।
७	''	१	''	ज्वर-अपस्मार आदि रोगोंका नाश।
८	''	११	''	वेदार्थपारदर्शिता और वेदज्ञान।
९	''	१	''	शत्रु-पराजय।
१०	''	१	''	ऐश्वर्य और पशुलाभ।
११	''	२	''	सर्वगुणसम्पन्ना कन्यासे विवाह।
१२	''	१.५	''	मेधाशक्ति और कवित्वकी प्राप्ति।
१३	''	१०	''	अखण्ड ऐश्वर्य, यश, सम्मान-प्राप्ति।
१४	**ॐ ह्रीं श्रीं राधिकायै नमः।**	१६	''	सर्वार्थ-सिद्धि।

जपके समय श्रीराधा-कृष्णके श्रीविग्रह या चित्रपटका पूजन करना चाहिये एवं जपका दशांश हवन या जप इसी मन्त्रसे करना चाहिये।

प्राणियोंका अन्तकाल आनेपर साक्षात् श्रीकृष्ण ही मृत्युरूप बन जाते हैं। ये धर्मके सनातन रक्षक हैं। तीनों लोकोंमें जो कुछ भी उत्तम, पवित्र तथा शुभ या अशुभ वस्तु है, वह सब अचिन्त्य भगवान् श्रीकृष्णका ही स्वरूप है, श्रीकृष्णसे भिन्न कोई वस्तु है, ऐसा सोचना अपनी विपरीत बुद्धिका ही परिचय देना है। भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी ही महिमा है। बल्कि ये इससे भी अधिक प्रभावशाली हैं। ये ही परम पुरुष अविनाशी नारायण हैं। ये ही स्थावर-जंगमरूप जगत्के आदि, मध्य और अन्त हैं तथा संसारमें जन्म लेनेकी इच्छावाले प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण भी ये ही हैं। इन्हींको अविकारी परमात्मा कहते हैं।

(अनुशासनपर्व १५८। ३—४६)

जगत्‌को डुबाते हैं और ब्रह्मा होकर सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। ये स्वयं वेद्यस्वरूप होकर भी वेदवेद्य तत्त्वको जाननेका प्रयत्न करते हैं। विधिरूप होकर भी विहित कर्मोंका आश्रय लेते हैं। ये ही धर्म, वेद और बलमें स्थित हैं। तुम यह विश्वास करो कि सारा चराचर जगत् श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। ये विश्वरूपधारी श्रीकृष्ण परम ज्योतिर्मय सूर्यका रूप धारण करके पूर्वदिशामें प्रकट होते हैं, जिनकी प्रभासे सारा जगत् प्रकाशित होता है। ये समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं। इन्होंने पूर्वकालमें पहले जलकी सृष्टि करके फिर सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न किया था। ऋतु, नाना प्रकारके उत्पात, अनेकानेक अद्‌भुत पदार्थ, मेघ, बिजली, ऐरावत और सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की इन्हींसे उत्पत्ति हुई है। तुम इन्हींको समस्त विश्वका आत्मा—विष्णु समझो। ये विश्वके निवासस्थान और निर्गुण हैं। इन्हींको वासुदेव, जीवभूत संकर्षण, प्रद्युम्न और चौथा अनिरुद्ध कहते हैं। ये आत्मयोनि परमात्मा सबको अपनी आज्ञाके अधीन रखते हैं! कुन्तीकुमार! ये देवता, असुर, पितर और तिर्यग् रूपसे पाँच प्रकारके संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छा रखकर पंचभूतोंसे युक्त जगत्‌के प्रेरक होकर सबको अपने अधीन रखते हैं। इन्होंने ही क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशकी सृष्टि की है। इन्होंने जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंसे युक्त इस चराचर जगत्‌की सृष्टि करके चतुर्विध भूतसमुदाय और इन पाँचोंकी बीजरूपा भूमिका निर्माण किया। ये ही आकाशस्वरूप बनकर इस पृथ्वीपर प्रचुर जलकी वर्षा करते हैं।

राजन्! इन्होंने ही इस विश्वको उत्पन्न किया है और ये ही आत्मयोनि श्रीकृष्ण अपनी ही शक्तिसे सबको जीवन प्रदान करते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, लोक, ऋषि, पितर, प्रजा और संक्षेपतः सम्पूर्ण प्राणियोंको इन्हींसे जीवन मिलता है। ये भगवान् भूतनाथ ही सदा विधिपूर्वक समस्त भूतोंकी सृष्टिकी इच्छा रखते हैं।

शुभ-अशुभ और स्थावर-जंगमरूप यह सारा जगत् श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुआ है, इस बातपर विश्वास करो। भूत, भविष्य और वर्तमान सब श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। यह तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि

भगवान् श्रीकृष्णके सार्वभौम कल्याणकारी वचनामृत

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥
नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने।
नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजाङ्घ्रये॥

श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, श्रीकृष्ण सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, सर्वमय-सर्वातीत, सर्वगुणमय-सर्वगुणातीत, महान् अणु, अचिन्त्यानन्त, परस्परविरोधीगुणधर्माश्रय, सर्वशक्तिमान्, सर्वलोक-महेश्वर, सर्वान्तर्यामी साक्षात् भगवान् हैं। श्रीकृष्ण अजन्मा, अविनाशी, हानोपादानरहित, देह-देही-भेदशून्य, नित्य-सत्य, सच्चिदानन्दघन, दिव्य विग्रह हैं और षोडशकलासम्पूर्ण अवतार हैं। यह सब होते हुए भी वे ऐतिहासिक आदर्श महापुरुष हैं। महाभारत आदि इतिहासोंमें उनकी सच्ची जीवनघटनाओंको लेकर सर्वत्र उन्हींका गुणगान विविध प्रकारोंसे किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण सभी आदर्श गुणोंके आकर तथा मूल उद्‌गम हैं और जीवनके सभी क्षेत्रोंमें उनकी परम आदर्श लीला और नित्य-सत्य उपदेशवाणी विद्यमान हैं, जो अनन्त कालतक सभी क्षेत्रोंके नर-नारियोंको उनके संघर्षमय जीवनमें निश्चित विजयदायिनी सफलता प्रदान करनेमें सहायता करती रहेगी। नित्य उज्ज्वल प्रकाश दिखाकर मार्गदर्शन करती रहेगी। संसारमें रहकर संसारसे पृथक् रहने, निरन्तर कर्मसंलग्न रहकर नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त करने, सब कुछ करते हुए भी कुछ न करने, अपने प्रत्येक कर्मके द्वारा मानव-सेवा करने और प्रत्येक क्रियाको भगवत्पूजन बनानेकी सिद्ध कला-कौशलकी शिक्षा देती रहेगी। वस्तुतः अखिल विश्वके अखिल प्राणियोंके लिये उनकी अपनी-अपनी विभिन्न समस्याओंको सुलझाकर यथार्थ मार्गपर अग्रसर होनेके सुअवसर और सौभाग्य प्रदान करनेमें भगवान्

श्रीकृष्णकी आदर्श लीला और अमृतमयी वाणी ही एकमात्र परम अमोघ साधन है।

भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य वचनोंसे हमारे पुराण-इतिहास भरे पड़े हैं। जो लोग श्रीमद्भागवत और महाभारतके श्रीकृष्णको दो मानते हैं, वे सर्वथा भ्रममें हैं। महाभारतमें ही ऐसे विभिन्न प्रसंग मिलते हैं, जिनसे दोनोंका सर्वथा एक होना सिद्ध है। उदाहरणके लिये यहाँ दो-एक उद्धरण दिये जा रहे हैं। महाभारतके द्रोणपर्वमें धृतराष्ट्र संजयसे कह रहे हैं—

शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य संजय।
कृतवान् यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान् क्वचित्॥
संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना।
विख्यापितं बलं बाह्वोस्त्रिषु लोकेषु संजय॥
उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम्॥
दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम्।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह॥

संजय! वसुदेवकुमार भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य कर्मोंका वर्णन सुनो। भगवान् गोविन्दने जो-जो कार्य किये हैं, वैसे दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं कर सकता। संजय! बाल्यावस्थामें जब कि वे गोकुलमें पल रहे थे, उन महात्मा श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंके बल-पराक्रमको तीनों लोकोंमें विख्यात कर दिया था। यमुनाके तटवर्ती वनमें उच्चैःश्रवाके तुल्य बलवान् और वायुके समान वेगवान् अश्वराज केशी रहता था। उसे श्रीकृष्णने मार दिया था। इसी प्रकार एक घोर कर्म करनेवाला दानव वहाँ बैलका रूप धारण करके रहता था, जो गौओंके लिये मृत्यु बनकर ही प्रकट हुआ था। उसे भी श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें अपने हाथोंसे ही मार डाला था।

द्रौपदीने चीर हरणके समय अत्यन्त व्याकुल अवस्थामें भी श्रीकृष्णको 'गोपीजनप्रिय', 'व्रजनाथ' और 'गोविन्द' आदि नामोंसे पुकारा है।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें भी पाण्डवोंका प्रसंग बार बार आया है और श्रीकृष्णको बार-बार 'देवकीपुत्र' कहा गया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि महाभारतकी बड़ी गम्भीर और श्रीमद्भागवतकी नटखट लीला करनेवाले श्रीकृष्ण दो नहीं, एक ही थे।

पाश्चात्य विद्वान् प्रो० विण्टरनीजने कहा था कि 'पाण्डवसखा श्रीकृष्ण, विष्णुके अवतार श्रीकृष्ण, हरिवंशके श्रीकृष्ण—तीनों रूप एक व्यक्तिके नहीं हो सकते।' इसी भ्रान्त मतका दुर्भाग्यवश हमारे कुछ भारतीय विद्वान् भी समर्थन करने लगे। यह पाश्चात्य अन्धानुकरणका ही परिणाम है।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण काव्य-कल्पित या बहुत इधरके व्यक्ति हों, सो बात भी नहीं है, वे ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और अबसे पाँच हजारसे अधिक वर्ष पूर्व यहाँ विद्यमान थे। भारतीय इतिहासका सूक्ष्म अनुसंधान करनेवाले राव बहादुर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्यने सिद्ध किया था कि श्रीकृष्णका प्राकट्य चन्द्रगुप्तसे २८२० वर्ष अर्थात् ईस्वी सन्से ३१४० वर्ष पूर्व हुआ था।

भारतीय आस्तिक जनताके लिये तथा भक्तोंके लिये तो इन बातोंका कोई भी मूल्य नहीं है। उनके लिये तो श्रीकृष्ण उनकी नित्य-प्रत्यक्ष-अनुभूति तथा परम दृढ़ सहज विश्वासके आधारपर साक्षात् भगवान् हैं और उनकी महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें वर्णित लीलाएँ सभी परम दिव्य और सत्य हैं। ऐसे सर्वेश्वर, योगेश्वर, सर्वजनमान्य भगवान् श्रीकृष्णने अपने जीवन-लीलाप्रसंगोंमें जिन महत्त्वपूर्ण वचनामृतोंकी धारा बहायी है, वह सर्वतोमुखी है और सार्वभौम है। उनकी दिव्य वाणी श्रीमद्भगवद्गीता तो सार्वभौम ग्रन्थ माना ही जाता है। उनकी अन्यान्य महती वचनसुधा भी अपने-अपने क्षेत्रमें सबके लिये परम उपादेय और सर्वजन कल्याणकारिणी है। बड़े आनन्दका विषय है कि भगवान् श्रीकृष्णकी परम श्रेष्ठ वचन-सुधासे पूर्ण कल्याणका श्रीकृष्ण वचनामृतांक 'विशेषांक' प्रकाशित किया

गया, जिससे नमूनेके तौरपर भगवान्‌की कुछ वचनावली नीचे दी जाती है। इसका अध्ययन कितना अधिक ज्ञानदायक, पथ-प्रदर्शक और उपयोगी होगा और जिन मूल ग्रन्थोंसे इन वचनोंका संक्षिप्त संकलन किया गया है, वे तथा वैसे ही अन्यान्य श्रीकृष्णवचनसुधासम्पन्न ग्रन्थोंका पठन-पाठन कितना कल्याणकारी होगा। अब भगवान्‌के कुछ वचनामृतोंकी बानगी देखिये और इनसे लाभ उठाइये।

पण्डित (ज्ञानी) अनिवार्य व्यवहार-भेदवाले प्राणियोंमें भी समदर्शी होते हैं

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५। १८)

वे ज्ञानीजन विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं। (इनमें समान व्यवहार असम्भव है,पर वे सबमें एक परमात्माको समभावसे देखते हैं।)

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥
नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि॥
विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(श्रीमद्भागवत ११। २९। १४—१६)

जो ब्राह्मण, चाण्डाल, चोर, ब्राह्मणभक्त, सूर्य, चिनगारी तथा कृपालु और क्रूरमें समदृष्टि रखता है, उसीको सच्चा पण्डित (ज्ञानी) समझना चाहिये। जब सभी नर-नारियोंमें निरन्तर मेरी (भगवान्‌की) ही भावना की जाती है, तब थोड़े ही समयमें उस पुरुषके चित्तमें स्पर्धा, ईर्ष्या, (दूसरेके प्रति) तिरस्कार और (अपनेमें) अहंकार आदि दोष दूर हो जाते हैं। अपने

ही लोग यदि हँसी करें तो करने दे, उनकी परवा न करे। 'मैं अच्छा हूँ, वह बुरा है' ऐसी देह-दृष्टिको और लोक-लज्जाको छोड़ दे तथा कुत्ते, चाण्डाल, गौ और गधेको भी पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करे।

पण्डित (ज्ञानी) कौन है?

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४। १९)

जिसके सम्पूर्ण (शास्त्रसम्मत) कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा दग्ध हो गये हैं, उसको ज्ञानीजन पण्डित कहते हैं।

समदर्शी महात्माका व्यवहार

यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम्।
वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः॥
यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद् यदृच्छया।
अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः॥
न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा।
वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः॥

(श्रीमद्भागवत ११। ११। १४—१६)

जिनके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी समस्त चेष्टाएँ बिना संकल्पके होती हैं, वे देहमें स्थित रहकर भी उसके गुणोंसे मुक्त हैं। उन तत्त्वज्ञ मुक्त पुरुषोंके शरीरको चाहे हिंसकलोग पीड़ा पहुँचायें और चाहे कभी कोई दैवयोगसे पूजा करने लगें—वे न तो किसीके सतानेसे दुःखी होते हैं और न पूजा करनेसे सुखी। जो समदर्शी महात्मा गुण और दोषकी भेददृष्टिसे ऊपर उठ गये हैं, वे न तो अच्छे काम करनेवालेकी स्तुति करते हैं और न बुरे काम करनेवालेकी निन्दा, न वे किसीकी अच्छी बात सुनकर उसकी सराहना करते हैं और न बुरी बात सुनकर किसीको झिड़कते ही हैं।

ब्रह्मज्ञानी न हर्षित होता है, न उद्विग्न

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५। २०)

जो पुरुष प्रियको प्राप्त होकर हर्षित नहीं होता और अप्रियको प्राप्त होकर उद्विग्न नहीं होता, वह स्थिरबुद्धि, मोहरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष परब्रह्म (परमात्मा)-में स्थित है।

आत्मा और भगवान्‌को सर्वत्र देखनेवाला योगी श्रेष्ठ है

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६। २९—३२)

सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें ऐक्यभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है। जो पुरुष सर्वत्र मुझ भगवान् वासुदेवको ही देखता है और सबको मुझ वासुदेवमें देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष मुझमें ऐक्यभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझे भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बर्तता हुआ भी मुझमें ही बर्तता है। अर्जुन! जो योगी अपने सदृश सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख

अथवा दुःखको भी सबमें (अपने सदृश ही) सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

ज्ञानी पुरुषकी अनुभूति

यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं
नानानुमानेन विरुद्धमन्यत्।
न मन्यते वस्तुतया मनीषी
स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम्॥

(श्रीमद्भागवत ११। २८। ३२)

यदि ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें इन्द्रियोंके विविध बाह्य विषय जो कि असत् हैं, आते भी हैं तो वह उन्हें अपने आत्मासे भिन्न नहीं मानता, क्योंकि ये युक्तियों, प्रमाणों और स्वानुभूतिसे सिद्ध नहीं होते। जैसे नींद टूट जानेपर स्वप्नमें देखे हुए और जागनेपर तिरोहित हुए पदार्थोंको कोई सत्य नहीं मानता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपनेसे भिन्न प्रतीयमान पदार्थोंको सत्य नहीं मानते।

एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो
महानुभूतिः सकलानुभूतिः।
एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे
येनेषिता वागसवश्चरन्ति॥

(श्रीमद्भागवत ११। २८। ३५)

उद्धवजी! आत्मा नित्य अपरोक्ष है, उसकी प्राप्ति नहीं करनी पड़ती। वह स्वयंप्रकाश है। उसमें अज्ञान आदि किसी प्रकारके विकार नहीं हैं। वह जन्मरहित है अर्थात् कभी किसी प्रकार भी वृत्तिमें आरूढ़ नहीं होता, इसलिये अप्रमेय है। ज्ञान आदिके द्वारा उसका संस्कार भी नहीं किया जा सकता। आत्मामें देश, काल और वस्तुकृत परिच्छेद न होनेके कारण अस्तित्व, वृद्धि, परिवर्तन, ह्रास और विनाश—उसका स्पर्श भी नहीं कर सकते। सबकी ओर सब प्रकारकी अनुभूतियाँ आत्मस्वरूप ही हैं। जब मन और वाणी आत्माको अपना अविषय समझकर निवृत्त हो जाते हैं तब वही

सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे शून्य एक अद्वितीय रह जाता है। व्यवहारदृष्टिसे उसके स्वरूपका वाणी और प्राण आदिके प्रवर्तकके रूपमें निरूपण किया जाता है।

ज्ञानाग्निसे सब कर्म भस्म हो जाते हैं

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४। ३६-३७)

यदि तू सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है; तो भी तू ज्ञानरूप नौकाके द्वारा निश्चय ही समस्त पापोंसे भलीभाँति तर जायगा। अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनोंको भस्ममय कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्ममय कर देती है।

भोगियोंकी रात्रि—मुनियोंके दिन

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ६९)

समस्त प्राणियोंके लिये जो रात्रिके समान है, उसमें नित्यज्ञानस्वरूप परमानन्दको प्राप्त वह संयमी (स्थितप्रज्ञ) जागता है और जिस नाशवान् संसारके प्रपंचमें सब प्राणी जागते हैं, परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रिके समान है।

उत्तम योगी कौन है?

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६। ४७)

सब योगियोंमें जो श्रद्धावान् योगी मुझ (भगवान्)-में लगे अन्तरात्मासे

मुझ (भगवान्)-को निरन्तर भजता है, वह मुझको अति उत्तम योगी मान्य है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १२।२)

मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ दिव्य साकार—सगुणस्वरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं।

महात्मा ही निरपेक्ष सुखको जानते हैं

जानन्ति सन्तः समदर्शिनो ये
दान्ता महान्तः किल नैरपेक्षाः।
ते नैरपेक्ष्यं परमं सुखं मे
ज्ञानेन्द्रियादीनि यथा रसादीन्॥

(गर्गसंहिता, वृन्दावन० २२।२४)

जो समदर्शी, इन्द्रियविजयी, अपेक्षारहित महात्मा संत हैं, वे ही मेरे निरपेक्ष परम सुखको जानते हैं, जैसे रसादिका ज्ञान ज्ञानेन्द्रियोंको ही होता है।

शान्तिको कौन प्राप्त होता है?

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २।७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर, स्पृहारहित, ममतारहित और अहंकाररहित होकर विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५। २९)

मैं (भगवान्) सब यज्ञ-तपोंका भोक्ता हूँ, सम्पूर्ण लोकोंका महान् ईश्वर हूँ और वही मैं समस्त भूत-प्राणियोंका सुहृद् हूँ।

इस प्रकार तत्त्वसे मुझको जान लेनेपर मनुष्य शान्तिको प्राप्त होता है।

कृतकृत्य कौन है?

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३।१७)

अवश्य ही जो मनुष्य आत्मामें ही रमण करनेवाला और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मामें ही संतुष्ट हो, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है।

सुखपूर्वक बन्धनसे मुक्त कौन होता है?

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५।३)

महाबाहु अर्जुन! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न आकांक्षा करता है, उसे सदा संन्यासी ही समझना चाहिये, क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

स्थितप्रज्ञ सम रहता है

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २।५६)

दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंके लिये

जो सर्वथा निःस्पृह रहता है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नहीं रहते हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

कर्म करते हुए भी किसको बन्धन नहीं होता?

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४।२२)

जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुई परिस्थितिमें सदा संतुष्ट रहता है, जिसमें मत्सरताका सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है—सिद्धि और असिद्धिमें सम रहनेवाला ऐसा पुरुष कर्म करते हुए भी बँधता नहीं।

कर्म करते हुए ही निष्पाप कौन रहता है?

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५।१०)

जो पुरुष सब कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह जलसे कमलके पत्तेकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता।

आत्माकी अमरता

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २।२३—२५)

इस आत्माको शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती,

इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता; क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह अदाह्य, अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य है और यह नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला तथा सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त है, अचिन्त्य है और विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करनेके योग्य नहीं है (तुझे शोक करना उचित नहीं है)।

कैसे भक्त भगवान्‌को प्रिय हैं?

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १२। १३—१९)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, सबका ही स्वार्थरहित मित्र और हेतुरहित दयालु, ममता और अहंकारसे रहित, दुःख-सुखोंकी प्राप्तिमें सम, क्षमाशील (अपराध करनेवालोंका भी कल्याण करनेवाला),

योगी, निरन्तर संतुष्ट, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जिससे किसी जीवको उद्वेग नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवके द्वारा उद्वेगको प्राप्त नहीं होता, जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है, वह भक्त मुझको प्रिय है। जो पुरुष आकांक्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, दक्ष, उदासीन—पक्षपातसे रहित और व्यथाओंसे मुक्त है, वह (अपने लिये) सारे आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है और न आकांक्षा करता है तथा जो शुभ-अशुभ (दोनों प्रकारके) सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है। जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है, सर्दी-गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है, आसक्तिसे रहित है, निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला है, मौन (मननशील) है, जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा संतुष्ट है और घरमें (रहनेके स्थानमें) ममता और आसक्तिरहित है, वह स्थिर-बुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

चार प्रकारके भक्त

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ७।१६—१९)

अर्जुन! सुकृती, अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार

प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं। इन (चारों)-में मुझ भगवान्‌के साथ सदा संयुक्त और विशुद्ध अहैतुक अनन्य प्रेमसम्पन्न ज्ञानी भक्त विशेषरूपसे अति उत्तम है। एकमात्र मुझ भगवान्‌को ही (परम श्रेयस्वरूप परम श्रेष्ठ और परम प्रेयस्वरूप परम प्रेष्ठ) जाननेवाला वह तत्त्वज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है। यह ज्ञानी भक्त ज्ञानकी परानिष्ठारूप पराभक्ति अथवा विशुद्ध प्रेमके द्वारा समग्र भगवान्‌का भजन करके ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठारूप भगवान्‌के पुरुषोत्तमस्वरूपको जान लेता है। भोगविमुख तथा भगवद्विमुख होकर भगवान्‌के लिये ही अपने-अपने भावानुसार भगवान्‌का भजन करनेवाले होनेके कारण ये सभी उदार हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा आत्मा ही है— ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह मद्‌गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त परमोत्तम गतिस्वरूप मुझ भगवान्‌में ही अच्छी प्रकार स्थित है। बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें (पराभक्ति-परायण ज्ञानकी परानिष्ठाको प्राप्त) ज्ञानी भक्त मुझ भगवान्‌को इस प्रकार भजता है कि सब कुछ वासुदेव ही है। (इनमें परम श्रेयकी भावनावालेको विश्वरूप सर्वत्र व्यापक वासुदेव—ब्रह्मका अनुभव होता है और परम प्रेमभाववाले ज्ञानी भक्तको जहाँ उसके नेत्र जाते हैं, वहीं अपने परम प्रेष्ठ भगवान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण दिखायी देते हैं। ऐसे महात्मा जगत्‌का अभाव नहीं देखते— जगत्‌को सर्वत्र सर्वथा एकमात्र भगवान्‌से ही परिपूर्ण देखते हैं—सर्वत्र भगवान्‌को ही अभिव्यक्त पाते हैं।) ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

भक्तका स्वरूप, महत्त्व और उसके प्रति भगवान्‌का प्रेम

अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः
मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः॥
न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥
न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।

न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। १३—१५,१७)

जिसने अपनी मानकर किसी भी वस्तुको नहीं रखा है और जो सब प्रकारके संग्रह-परिग्रहसे रहित—अकिंचन है, जो अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके शान्त और समदर्शी हो गया है, जो मेरी प्राप्तिसे ही मेरे सान्निध्यका अनुभव करके ही सदा-सर्वदा पूर्ण संतोषका अनुभव करता है, उसके लिये आकाशका एक-एक कोना आनन्दसे भरा हुआ है।

जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका। उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है। वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्षतककी अभिलाषा नहीं करता। उद्धव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है। ऐसा मेरा भक्त किसीकी अपेक्षा नहीं देखता, जगत्के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, जो सब प्रकारके संग्रह-परिग्रहसे रहित हैं—यहाँतक कि शरीर आदिमें भी अहंता-ममता नहीं रखते, जिनका चित्त मेरे ही प्रेमके रंगमें रँग गया है, जो संसारकी वासनाओंसे शान्त—उपरत हो चुके हैं और जो अपनी महत्ता-उदारताके कारण स्वभावसे ही समस्त प्राणियोंके प्रति दया और प्रेमका भाव रखते हैं, किसी प्रकारकी कामना जिनकी बुद्धिका स्पर्श नहीं कर पाती, उन्हें मेरे जिस परमानन्द-स्वरूपका अनुभव होता है, उसे और कोई नहीं जान सकता, क्योंकि वह परमानन्द तो केवल निरपेक्षतासे ही प्राप्त होता है।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २०—२२)

उद्धव! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं, जितनी दिनोंदिन बढ़नेवाली मेरी अनन्य प्रेममयी भक्ति। मैं संतोंका प्रियतम आत्मा हूँ, मैं अनन्य श्रद्धा और अनन्य भक्तिसे ही पकड़में आता हूँ। मुझे प्राप्त करनेका यह एक ही उपाय है। मेरी अनन्य भक्ति उन लोगोंको भी पवित्र जातिदोषसे मुक्त कर देती है, जो जन्मसे ही चाण्डाल हैं। इसके विपरीत जो मेरी भक्तिसे वंचित हैं, उनके चित्तको सत्य और दयासे युक्त धर्म और तपस्यासे युक्त विद्या भी भलीभाँति पवित्र करनेमें असमर्थ है।

भगवान् भक्तके पीछे-पीछे घूमा करते हैं

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। १६)

भक्तके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।

भक्त त्रिभुवनको पवित्र करता है

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च

मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। २४)

जिसकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परंतु जो कभी-कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है। कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है तो कहीं नाचने लगता है। भैया उद्धव! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि सारे संसारको पवित्र कर देता है।

भगवान्‌के गुण-श्रवणका फल

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवांजनसम्प्रयुक्तम्॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। २६)

उद्धवजी! मेरी परम पावन लीला-कथाके श्रवण-कीर्तनसे ज्यों-ज्यों चित्तका मैल धुलता जाता है, त्यों-त्यों उसे सूक्ष्म वस्तुके—वास्तविक तत्त्वके दर्शन होने लगते हैं— जैसे अंजनके द्वारा नेत्रोंका दोष मिटनेपर उसमें सूक्ष्म वस्तुओंको देखनेकी शक्ति आने लगती है।

भगवान्‌के कीर्तनका महत्त्व

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
मद्भक्तसदृशो लोके पिता माता गुरुर्न हि।
न बन्धुर्नापरे चैव इति वेदविदो विदुः॥
ये मत्कीर्तौ जनं सक्तं पृथक् कुर्वन्ति मानवाः।
तथा मद्द्वेषिणो नित्यं पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
शृणोमि स्वयशोगानं प्रेम्णा भक्तैरुदाहृतम्।

कृतं गोपैश्च गोपीभिर्गानं त्यक्त्वा च कौतुकम्॥

(आदिपुराण १९। ३५, ३७—३९)

मैं न तो वैकुण्ठमें वास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें ही रहता हूँ। नारद! मेरे भक्त जहाँ मेरा गुण-कीर्तन या स्मरण करते हैं, मैं वहीं रहता हूँ। मेरे भक्तके समान संसारमें माता, पिता, गुरु या बन्धु कोई भी हितकर नहीं है—ऐसा वेदवादियोंका कथन है। जो मनुष्य मेरे कीर्तनमें लगे हुए व्यक्तिको कीर्तनसे अलग कर देते हैं, वे मेरे द्वेषी हैं और अपवित्र नरकमें गिरते हैं। मैं स्वयं अपने भक्त गोप-गोपियोंके द्वारा गाये गये गुणगानको बड़े चावसे सुनता हूँ।

भगवान् किसके द्वारा खरीदे गये?

गीत्वा च मम नामानि नर्त्तयेन्मम संनिधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

(आदिपुराण, बंगला संस्करण)

जो मेरे नामोंका गान करता हुआ मेरे श्रीविग्रहके सामने अथवा मुझे अपने समीप मानकर नाचता है, मैं यह तुमसे सत्य कहता हूँ, अर्जुन! मैं उसके द्वारा खरीद लिया गया हूँ।

भगवत्प्रेमसे आनन्द

कर्मेन्द्रियाणीह यथा रसादीं-
स्तथा सकामा मुनयः सुखं यत्।
मनाङ् न जानन्ति हि नैरपेक्ष्यं
गूढं परं निर्गुणलक्षणं तत्॥
ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि
भेदं न कुर्वन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत्।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति
तद्धेतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः॥

(गर्गसंहिता, मथुरा० ४।२०, २४)

मेरी प्रीतिसे जो आनन्द होता है, वह निर्गुण, निरपेक्ष, अचिन्त्य एवं

परम उत्तम है। उस सुखको सकामी मुनि नहीं जान सकते, ठीक उसी प्रकार जैसे रस आदि गुणको कर्मेन्द्रियाँ नहीं जानतीं। जिस प्रकार दूध तथा शुक्लवर्णमें अभेद-सम्बन्ध है, वैसे ही तुम राधिका और मैं केशव—इन दोनोंमें जो किसी तरहका अन्तर नहीं समझते वे ही परमधामके अधिकारी होते हैं; क्योंकि उनके हृदयमें अहैतुक प्रेमके भाव उठते रहते हैं।

चाण्डाल भक्तकी भी महत्ता

मद्भक्तान् शूद्रसामान्यादवमन्यन्ति ये नराः।
नरकेष्वेव तिष्ठन्ति वर्षकोटिं नराधमाः॥
चाण्डालमपि मद्भक्तं नावमन्येत बुद्धिमान्।
अवमानात् पतन्त्येव नरके रौरवे नराः॥
मम भक्तस्य भक्तेषु प्रीतिरभ्यधिका मम।
तस्मान्मद्भक्तभक्ताश्च पूजनीया विशेषतः॥

(महाभारत, आश्व० दाक्षिणात्यपाठ)

जो मनुष्य मेरे भक्तोंका शूद्रजातिमें जन्म होनेके कारण अपमान करते हैं, वे नराधम करोड़ों वर्षोंतक नरकोंमें निवास करते हैं। अतः चाण्डाल भी यदि मेरा भक्त हो तो बुद्धिमान् पुरुषको उसका अपमान नहीं करना चाहिये। अपमान करनेसे मनुष्यको रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। जो मनुष्य मेरे भक्तोंके भक्त होते हैं, उनपर मेरा विशेष प्रेम होता है। इसलिये मेरे भक्तके भक्तोंका विशेष सत्कार करना चाहिये।

शूद्रका भक्तिपूर्वक दिया हुआ पदार्थ भगवान् सिर चढ़ाते हैं

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतं मूर्ध्ना गृह्णामि शूद्रतः॥

(महाभारत, आश्व० दाक्षिणात्यपाठ)

शूद्र भी यदि भक्तिपूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल अर्पण करता है, तो मैं उसके भक्तिपूर्वक दिये हुए उपहारको सदा सिर

चढ़ाता हूँ।

भगवान् भक्तमें, भक्त भगवान्‌में

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें सम हूँ। न कोई मेरा द्वेषका पात्र है और न प्रिय है, परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूँ।

पाप करनेवाला भी अनन्य भजन करनेपर शाश्वत शान्ति पाता है

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। ३०-३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी मेरा अनन्य भक्त होकर मुझको भजता है, तो वह साधु ही माननेयोग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। कुन्तीपुत्र अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता (उसका अपनी स्थितिसे कभी पतन नहीं होता)।

भक्तिसे शीघ्र कर्मक्षय

नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मान्तरशतैरपि।
मद्भक्त्या तद् बहु स्वल्पं विपरीतमभक्तितः॥

(आदिपुराण २०। ६९)

बिना भोगके सौ जन्मोंतक भी कर्मोंका नाश नहीं होता है। परंतु मेरी भक्तिसे महान् कर्म-राशि भी शीघ्र समाप्त हो जाती है और मेरी भक्तिके बिना थोड़े कर्म भी जल्दी नहीं क्षीण होते।

भगवान्‌को छोड़कर दूसरी ओर दौड़नेवाला मूर्ख है

मामेव यः परित्यज्य वस्तुनोऽर्थेऽभिधावति।
विवेकरहितो मूर्खो दुःखमेवाभिपद्यते॥
तस्य त्रैकालिकी हानिर्भवत्येवान्यथा न हि।

(आदिपुराण २८। १२-१३)

जो मुझे छोड़कर किसी दूसरी वस्तुके लिये दौड़ता है, वह विवेकरहित और मूर्ख है। उसे केवल दुःख ही हाथ लगता है। उसे तीनों कालमें ही हानि होती है, सुख नहीं मिलता।

भक्तिपूर्वक अर्पित पदार्थ भगवान् खाते हैं

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २६)

जो कोई भी भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं स्वयं प्रीतिसहित खाता हूँ।

सब भगवान्‌के अर्पण करनेवाला कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जाता है

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २७-२८)

अर्जुन! तू जो कुछ करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर। (इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण होते हैं) ऐसे संन्यास-

(समर्पण-) योगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।

भगवत्स्मरणकी महिमा

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥

विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवः।
येषामेव स्थिरा बुद्धिर्न तेषां दुर्गतिर्भवेत्॥

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनं हरिः॥

(गरुडपुराण, उत्तर० ३५। ४५—४७)

जिनके हृदयमें कमल-दलके समान श्यामल भगवान् जनार्दन विराजते हैं, उन्हें निरन्तर लाभ एवं विजय है, उनकी पराजय (उन्हें दुःख) कैसी? भगवान् विष्णु ही माता, पिता, स्वजन तथा बान्धव हैं— इस प्रकार जिनकी निश्चयात्मिका बुद्धि हो गयी है, उनकी दुर्गति नहीं होती। भगवान् विष्णु कल्याणस्वरूप हैं, भगवान् गरुडध्वज मंगलमय हैं, कमलके तुल्य नेत्रोंवाले भगवान् पुण्डरीकाक्ष शुभरूप हैं। भगवान् श्रीहरि समस्त मंगलोंके आवास हैं।

अनन्य चिन्तन करनेवालेके योगक्षेम भगवान् वहन करते हैं

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २२)

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन निरन्तर चिन्तन करते हुए मुझे निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्ययुक्त (नित्य-निरन्तर मेरे भजनपरायण रहनेवाले) पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ (उनके लिये अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्तके संरक्षणका सारा भार मैं ही वहन करता हूँ)।

अपने कर्मसे भगवान्‌की पूजा

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंके द्वारा पूजा करके मनुष्य (भगवत्प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

ध्यानका साधन

संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६। २४—२६)

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको निःशेषरूपसे त्यागकर और मनके द्वारा इन्द्रियोंके समुदायको सभी ओरसे भलीभाँति रोककर, क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे। यह स्थिर न रहनेवाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषयके निमित्तसे संसारमें विचरता है, उस-उस विषयसे हटाकर इसे बार-बार परमात्मामें ही निरुद्ध करे।

भगवान् संसार-सागरसे तुरंत किसको तार देते हैं?

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १२। ६-७)

जो भक्त सम्पूर्ण कर्मोंका मुझमें संन्यास (पूर्ण समर्पण) करके, मेरे परायण (मुझको ही अनन्यगति, अनन्य प्रियतम, अनन्य साध्य और अनन्य साधन माननेवाले) होकर, अनन्य भक्तियोगके द्वारा निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मुझको ही भजते हैं। अर्जुन! उन मुझमें आविष्टचित्त प्रेमी भक्तोंका मृत्युरूप संसार-सागरसे मैं शीघ्र ही समुद्धार (भलीभाँति पार) करनेवाला होता हूँ। (उन्हें अपने साधन-बलपर प्रयास करके—तैरकर संसार-समुद्र पार नहीं करना पड़ता। मैं अखिल-सौन्दर्य-माधुर्य-निधि स्वयं अपने साथ उन्हें सुखमय सुदृढ़ कृपापोतपर चढ़ाकर तुरंत ही पार उतार देता हूँ।)

सर्वगुह्यतम परम साधन—शरणागति

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८। ६४—६६)

(अब) तू सर्वगुह्यतम (सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय) मेरे परम श्रेष्ठ वचनको फिर भी सुन। तू मेरा दृढ़ इष्ट—अतिशय प्रिय है, अतएव तेरे ही (अथवा तेरे ही-जैसे प्रेमी भक्तोंके) हितके लिये मैं तुझसे यह परम वचन कह रहा हूँ। अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझको ही प्राप्त होगा—यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त

प्रिय है। सब धर्मोंको त्यागकर तू केवल एक मुझ परम पुरुषोत्तम परमेश्वर श्रीकृष्णकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा! तू शोक मत कर।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। ३२-३३)

अर्जुन! मेरे शरण होनेपर स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि (चाण्डालादि) कोई भी हों, वे सब परम गतिको ही प्राप्त होते हैं। फिर जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्त हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है। इसलिये तू इस सुखरहित और क्षणभंगुर मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।

शरणागतके लिये शोककी वस्तु नहीं रह जाती

मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम्॥

(श्रीमद्भागवत १०। ५१। ४४)

जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है, उसके लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसके लिये वह शोक करे।

असम्मूढ़ कौन है?

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १०। ३)

जो मुझ (श्रीकृष्ण)-को अजन्मा, अनादि और लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें असम्मूढ़ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १५। १९)

भारत! जो असम्मूढ़ पुरुष मुझको इस प्रकार 'पुरुषोत्तम' जानता है वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझको ही भजता है।

मूढ़ कौन है?

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ७। १५)

जिनका ज्ञान मायाके द्वारा हरा गया है, जो आसुरीभावका आश्रय किये हैं तथा जो मनुष्योंमें अधम एवं दूषित कर्म करनेवाले हैं, वे मूढ़लोग मुझको (भगवान्‌को) नहीं भजते।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। ११)

समस्त भूत-प्राणियोंके महान् ईश्वररूप मेरे (भगवान्‌के) परम भावको न जाननेवाले मूढ़लोग मानव-शरीरधारी मुझ परमात्माको तुच्छ समझते हैं।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १६। २०)

(आसुरी सम्पदावाले) मूढ़लोग मुझको (भगवान्‌को) न प्राप्त होकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होकर फिर उससे भी नीच गति (घोर नरक आदि)-को प्राप्त होते हैं।

गोपियोंका स्वरूप

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥

(श्रीमद्भागवत १०। ४६। ४)

उन (गोपियों)-के प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धिसे भी मुझको ही अपना प्यारा, अपना प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रखा है। मेरा यह व्रत है कि जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ।

गोपी-महिमा

यथाहं च तथा यूयं नाहं भेदः श्रुतौ श्रुतः।
प्राणोऽहं चैव युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो॥
व्रतं वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः।
सहागताश्च गोलोकाद् गमनं च मया सह॥
गच्छत स्वालयं शीघ्रं वोऽहं जन्मनि जन्मनि।
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म० २७। २३८—२४०)

जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हममें-तुममें भेद नहीं है। मैं तुम्हारे प्राण हूँ और तुम भी मेरे लिये प्राणस्वरूपा हो। प्यारी गोपियो! तुमलोगोंका यह व्रत लोकरक्षाके लिये है, स्वार्थ-सिद्धिके लिये नहीं; क्योंकि तुमलोग गोलोकसे मेरे साथ आयी हो और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ चलना है (तुम मेरी नित्यसिद्धा प्रेयसी हो। तुमने साधन करके मुझे पाया है, ऐसी बात नहीं है)। अब शीघ्र अपने घर जाओ। मैं जन्म-जन्ममें तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हो, इसमें संशय नहीं है।

निजांगमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढप्रेमभाजनम्॥
सहायागुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः।
सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न॥
मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

(आदिपुराण)

अर्जुन! गोपियाँ अपने अंगोंको मेरी सेवाके लिये ही सुरक्षित रखती हैं, उन गोपियोंके अतिरिक्त मेरा निगूढ़ प्रेमपात्र और कोई नहीं है। वे मेरी सहायिका हैं, गुरु हैं, शिष्या हैं, बन्धु हैं तथा प्रेयसी हैं। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ—अर्जुन! गोपियाँ मेरी क्या नहीं होती हैं— वे सब कुछ हैं। पार्थ! मेरी यथार्थ महिमा, मेरी पूजा (सेवा), मेरी श्रद्धा और मेरे मनकी बातको तत्त्वसे केवल गोपियाँ ही जानती हैं, अन्य कोई नहीं जानता।

भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हैं

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १४। २७)

उस अविनाशी परब्रह्मका, अमृतका, नित्य धर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका आश्रय मैं (पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही) हूँ।

सारे यज्ञोंके भोक्ता और स्वामी भगवान् ही हैं

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २४)

सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ, परंतु वे मुझ

परमेश्वरको तत्त्वसे नहीं जानते, इसीसे उनका पतन होता है (वे पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं)।

भगवान्‌के सिवा और कुछ भी नहीं है

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ७। ७)

धनंजय! मुझसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें (सूत्रके) मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।

भगवान्‌में सत्य और धर्म

न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद् भविष्यति।
एष संजीवयाम्येनं पश्यतां सर्वदेहिनाम्॥
नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन।
न च युद्धात् परावृत्तस्तथा संजीवतामयम्॥
यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणस्य विशेषतः।
अभिमन्योः सुतो जातो मृतो जीवत्वयं तथा॥
यथाहं नाभिजानामि विजये तु कदाचन।
विरोधं तेन सत्येन मृतो जीवत्वयं शिशुः॥
यथा सत्यं च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ।
तथा मृतः शिशुरयं जीवतादभिमन्युजः॥
यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहतौ मया।
तेन सत्येन बालोऽयं पुनः संजीवतामयम्॥

(महाभारत, आश्वमेधिक० ६९।१८—२३)

बेटी उत्तरा! मैं झूठ नहीं बोलता। मैंने जो प्रतिज्ञा की है, वह सत्य होकर ही रहेगी। देखो, मैं समस्त देहधारियोंके देखते-देखते अभी इस बालकको जिलाये देता हूँ। मैंने खेल-कूदमें भी कभी मिथ्या-भाषण नहीं किया है और युद्धमें कभी पीठ नहीं दिखायी है। इस शक्तिके प्रभावसे

अभिमन्युका यह बालक जीवित हो जाय। यदि धर्म और ब्राह्मण मुझे विशेष प्रिय हों, तो अभिमन्युका यह पुत्र, जो पैदा होते ही मर गया था, फिर जीवित हो जाय। मैंने कभी अर्जुनसे विरोध किया हो, इसका स्मरण नहीं है, इस सत्यके प्रभावसे यह मरा हुआ बालक अभी जीवित हो जाय। यदि मुझमें सत्य और धर्मकी निरन्तर स्थिति बनी रहती हो तो अभिमन्युका यह मरा हुआ बालक जी उठे। यदि मैंने कंस और केशीका धर्मके अनुसार वध किया है, तो इस सत्यके प्रभावसे यह बालक फिर जीवित हो जाय।

सबमें भगवान्‌का तेज है

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १५। १२)

जो सूर्यमें स्थित तेज समस्त जगत्‌को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें है, उसको तू मेरा ही तेज जान।

भगवान्‌का अवतार कब और क्यों होता है ?

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४। ६—८)

अर्जुन! मैं अजन्मा, अविनाशीस्वरूप तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर रहते हुए ही अपनी प्रकृतिमें अधिष्ठित रहकर अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि

होती है, तब-तब ही मैं अपनेको उपर्युक्त रूपमें प्रकट करता हूँ। साधु पुरुषोंका परित्राण करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

भगवान्‌के जन्म-कर्मको जाननेके फल

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४। ९)

अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य (अप्राकृत-अलौकिक) हैं, इस प्रकार जो तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, वह मुझे ही प्राप्त होता है।

भगवान्‌को जो जैसे भजता है, वैसे ही भगवान् उसे भजते हैं

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४। ११)

जो मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ। अर्जुन! सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

श्रीकृष्णका मारनेवालेके साथ भी आदर्श व्यवहार

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम्॥

(श्रीमद्भा० ११। ३०। ३९)

व्याधके द्वारा पैरमें बाण मारनेपर उस व्याधसे भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे जरे! तू डर मत, उठ-उठ। यह तो तूने मेरे मनका काम किया है! जा, मेरी आज्ञासे तू उस स्वर्गमें निवास कर, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े पुण्यवानोंको होती है।

सत्संग तथा भक्तियोग

प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम्॥

(श्रीमद्भा० ११। ११। ४८)

प्यारे उद्धव! मेरा ऐसा निश्चय है कि सत्संग और भक्तियोग— इन दो साधनोंका एक साथ ही अनुष्ठान करते रहना चाहिये। प्रायः इन दोनोंके अतिरिक्त संसारसागरसे पार होनेका और कोई उपाय नहीं है, क्योंकि संतपुरुष मुझे अपना आश्रय मानते हैं और मैं सदा-सर्वदा उनके पास बना रहता हूँ।

सत्संगकी महिमा

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १२। १-२)

जगत्‌में जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है। यही कारण है कि सत्संग जिस प्रकार मुझे वशमें कर लेता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य, न धर्मपालन और न स्वाध्याय। तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त और दक्षिणासे भी मैं वैसा प्रसन्न नहीं होता। कहाँतक कहूँ— व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम-नियम भी सत्संगके समान मुझे वशमें करनेमें समर्थ नहीं हैं।

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। ४१)

जिनकी बुद्धि समदर्शिनी है और हृदय पूर्णरूपसे मेरे प्रति समर्पित

है, उन साधु पुरुषोंके दर्शनसे बन्धन होना ठीक वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होनेपर मनुष्यके नेत्रोंके सामने अन्धकार होना।

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रयः।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने॥
सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता।
स वै मे दर्शितं सद्भिरंजसा विन्दते पदम्॥

(श्रीमद्भा० ११। ११। २४-२५)

प्रिय उद्धव! जो मेरा आश्रय लेकर मेरे ही लिये धर्म, काम और अर्थका सेवन करता है, उसे मुझ अविनाशी पुरुषके प्रति अनन्य प्रेममयी निश्चला भक्ति प्राप्त हो जाती है। भक्तिकी प्राप्ति सत्संगसे होती है, जिसे भक्ति प्राप्त हो जाती है, वह मेरी उपासना करता है, मेरे सांनिध्यका अनुभव करता है। इस प्रकार जब उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब वह संतोंके उपदेशोंके अनुसार उनके द्वारा बताये हुए मेरे परमपदको—वास्तविक स्वरूपको सहजहीमें प्राप्त हो जाता है।

संत ही महान् तीर्थ हैं

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥
नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया॥

(श्रीमद्भा० १०। ८४। ११-१२)

केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्टी या पत्थरकी प्रतिमाएँ ही देवता नहीं होतीं; संत पुरुष ही वास्तवमें तीर्थ और देवता हैं। उन सबका बहुत समयतक सेवन किया जाय, तब वे पवित्र करते हैं, परंतु संत पुरुष तो दर्शनमात्रसे ही कृतार्थ कर देते हैं। अग्नि,

सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मनके अधिष्ठातृदेवता उपासना करनेपर भी पापका पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते; क्योंकि उनकी उपासनासे भेद-बुद्धिका नाश नहीं होता, वह और भी बढ़ती है। परंतु यदि घड़ी-दो-घड़ी भी ज्ञानी महापुरुषोंकी सेवा की जाय तो वे सारे पाप-ताप मिटा देते हैं, क्योंकि वे भेद-बुद्धिके विनाशक हैं।

अमूल्य मानवशरीरके द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति करनी चाहिये

न ह्यंगोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि।
एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥

(श्रीमद्भा० ११। २९। २०, २२)

उद्धव! यह मेरा भागवत-धर्म है, इसको एक बार आरम्भ कर देनेके बाद फिर किसी भी विघ्न-बाधासे इसमें रत्तीभर भी अन्तर नहीं पड़ता। विवेकियोंके विवेक और चतुरोंकी चतुराईकी पराकाष्ठा इसीमें है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीरके द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्य तत्त्वको प्राप्त कर लें।

अहंकार महान् विष है

अहन्त्वविषचूर्णेन येषां कायो न मारितः।
कुर्वन्तोऽपि हरन्तोऽपि न च ते निर्विषूचिकाः॥

(योगवासिष्ठ ६। २। ५३। १०)

जिनका शरीर अहंकाररूपी विषसे नष्ट नहीं हुआ, वे सब प्रकारके कार्योंको करते तथा उनका फल भोगते हुए भी सभी राग-रोगादि दोषोंसे मुक्त तथा स्वस्थ हैं।

ममतासे हानि और ममता-त्यागसे परम लाभ

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥

ब्रह्ममृत्यू ततो राजन्नात्मन्येव व्यवस्थितौ।
अदृश्यमानौ भूतानि योधयेतामसंशयम्॥
अविनाशोऽस्य सत्त्वस्य नियतो यदि भारत।
भित्त्वा शरीरं भूतानामहिंसां प्रतिपद्यते॥
लब्ध्वा हि पृथ्वीं कृत्स्नां सहस्थावरजंगमाम्।
ममत्वं यस्य नैव स्यात् किं तया स करिष्यति॥
अथवा वसतः पार्थ वने वन्येन जीवतः।
ममता यस्य द्रव्येषु मृत्योरास्ये स वर्तते॥

(महाभारत, आश्वमेधिक० १३। ४—७)

'मम' (मेरा) ये दो अक्षर ही मृत्युरूप हैं और **'न मम'** (मेरा नहीं है) यह तीन अक्षरोंका पद सनातन ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण है। ममता मृत्यु है और उसका त्याग सनातन अमृतत्व है। राजन्! इस प्रकार मृत्यु और अमृत—दोनों अपने भीतर ही स्थित हैं। ये दोनों अदृश्य रहकर प्राणियोंको लड़ाते हैं अर्थात् किसीको अपना मानना और किसीको अपना न मानना यह भाव ही युद्धका कारण है, इसमें संशय नहीं। भरतनन्दन! यदि इस जगत्की सत्ताका विनाश न होना ही निश्चित हो, तब तो प्राणियोंके शरीरका भेदन करके भी मनुष्य अहिंसाका ही फल प्राप्त करेगा। चराचर प्राणियोंसहित समूची पृथ्वीको पाकर भी जिसकी उसमें ममता नहीं होती, वह उसको लेकर क्या करेगा अर्थात् उस सम्पत्तिसे उसका कोई अनर्थ नहीं हो सकता। किंतु कुन्तीनन्दन! जो वनमें रहकर जंगली फल-फूलोंसे ही जीवन-निर्वाह करता है, उसकी भी यदि द्रव्योंमें ममता है तो वह मौतके मुखमें ही विद्यमान है।

ममतारूपी मलके परित्यागमें ही कल्याण है

न क्वचिद् राजते कायो ममतामेध्यदूषितः।
प्राज्ञोऽप्यतिबहुज्ञोऽपि दुःशील इव मानुषः॥

(योगवासिष्ठ ६। २। ५३। ११)

जैसे अत्यन्त बुद्धिमान् तथा विशेषज्ञ व्यक्ति भी दुष्टस्वभावका होनेसे शोभा नहीं पाता, उसी प्रकार ममतारूपी मलमें लिपटा हुआ प्राणी भी कहीं शोभा नहीं पाता।

कामनाओंका निग्रह ही धर्म और मोक्षका मूल है

कामात्मानं न प्रशंसन्ति लोके
नेहाकामा काचिदस्ति प्रवृत्तिः।
सर्वे कामा मनसोऽङ्गप्रभूता
यान् पण्डितः संहरते विचिन्त्य॥
भूयो भूयो जन्मनोऽभ्यासयोगाद्
योगी योगं सारमार्गं विचिन्त्य।
दानं च वेदाध्ययनं तपश्च
काम्यानि कर्माणि च वैदिकानि॥
व्रतं यज्ञान् नियमान् ध्यानयोगान्
कामेन यो नारभते विदित्वा।
यद्यच्चायं कामयते स धर्मो
न यो धर्मो नियमस्तस्य मूलम्॥

(महाभारत, आश्वमेधिक० १३। ९—११)

जिसका मन कामनाओंमें आसक्त है, उसकी संसारके लोग प्रशंसा नहीं करते हैं। कोई भी प्रवृत्ति बिना कामनाके नहीं होती और समस्त कामनाएँ मनसे ही प्रकट होती हैं। विद्वान् पुरुष कामनाओंको दुःखका कारण मानकर उनका परित्याग कर देते हैं। योगी पुरुष अनेक जन्मोंके अभ्याससे योगको ही मोक्षका मार्ग निश्चित करके कामनाओंका नाश कर डालता है। जो इस बातको जानता है—वह दान, वेदाध्ययन, तप, वेदोक्त कर्म, व्रत, यज्ञ, नियम और ध्यान-योगादिका कामनापूर्वक अनुष्ठान नहीं करता तथा जिस कर्मसे वह कुछ कामना रखता है, वह धर्म नहीं है। वास्तवमें कामनाओंका निग्रह ही धर्म है और वही मोक्षका मूल है।

शम-तितिक्षा आदिके यथार्थ अर्थ

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः।
तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः॥
दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम्।
स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम्॥
ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता।
कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते॥
धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः।
दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम्॥
भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः।
विद्याऽऽत्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु॥
श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः।
दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित्॥
मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः।
उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः॥
नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे।
गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते॥

(श्रीमद्भा० ११। १९। ३६—४३)

बुद्धिका मुझमें लग जाना ही 'शम' है। इन्द्रियोंके संयमका नाम 'दम' है। न्यायसे प्राप्त दुःखके सहनेका नाम 'तितिक्षा' है। जिह्वा और जननेन्द्रियपर विजय प्राप्त करना 'धैर्य' है। किसीसे द्रोह न करना, सबको अभय देना 'दान' है। कामनाओंका त्याग करना ही 'तप' है। अपनी वासनाओंपर विजय प्राप्त करना ही 'शूरता' है। सर्वत्र समस्वरूप, सत्यस्वरूप परमात्माका दर्शन ही 'सत्य' है। इसी प्रकार सत्य और

मधुर भाषणको ही महात्माओंने 'ऋत' कहा है। कर्मोंमें आसक्त न होना ही 'शौच' है। कामनाओंका त्याग ही सच्चा 'संन्यास' है। धर्म ही मनुष्योंका अभीष्ट 'धन' है। मैं परमेश्वर ही 'यज्ञ' हूँ। ज्ञानका उपदेश देना ही 'दक्षिणा' है। प्राणायाम ही श्रेष्ठ 'बल' है। मेरा ऐश्वर्य ही 'भग' है। मेरी श्रेष्ठ भक्ति ही उत्तम 'लाभ' है। सच्ची 'विद्या' वही है, जिससे ब्रह्म और आत्माका भेद मिट जाता है। पाप करनेसे घृणा होनेका नाम ही 'लज्जा' है। निरपेक्षता आदि गुण ही शरीरका सच्चा सौन्दर्य—'श्री' है। दुःख और सुख दोनोंकी भावनाका सदाके लिये नष्ट हो जाना ही 'सुख' है। विषयभोगोंकी कामना ही 'दुःख' है। जो बन्धन और मोक्षका तत्त्व जानता है, वही 'पण्डित' है। शरीर आदिमें जिसका 'मैं' पन है, वही 'मूर्ख' है। जो संसारकी ओरसे निवृत्त करके मुझे प्राप्त करा देता है, वही सच्चा 'सुमार्ग' है। चित्तकी बहिर्मुखता ही 'कुमार्ग' है। सत्त्वगुणकी वृद्धि ही 'स्वर्ग' और सखे! तमोगुणकी वृद्धि ही 'नरक' है। गुरु ही सच्चा 'भाई-बन्धु' है और वह 'गुरु' मैं ही हूँ। यह मनुष्य-शरीर ही सच्चा 'घर' है तथा सच्चा 'धनी' वह है, जो गुणोंसे सम्पन्न है, जिसके पास गुणोंका खजाना है।

अहिंसा परम धर्म है

अहिंसा सर्वभूतानामेतत् कृत्यतमं मतम्॥
एतत् पदमनुद्विग्नं वरिष्ठं धर्मलक्षणम्।

(महाभारत, आश्वमेधिक०, अनु० ५०। २-३)

सब प्राणियोंकी अहिंसा ही सर्वोत्तम कर्तव्य है—ऐसा माना गया है। यह साधन उद्वेगरहित, सर्वश्रेष्ठ और धर्मको लक्षित करानेवाला है।

हिंसापराश्च ये केचिद् ये च नास्तिकवृत्तयः।
लोभमोहसमायुक्तास्ते वै निरयगामिनः॥

(महाभारत, आश्वमेधिक०, अनु० ५०। ४)

जो लोग प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, नास्तिक वृत्तिका आश्रय लेते हैं और लोभ तथा मोहमें फँसे हुए हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है।

सत्कर्मरहित दिन व्यर्थ जाता है

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्।
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते वृथा स दिवसो नृणाम्॥
यत् प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति।
तदीयरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता॥

(गरुडपुराण, उत्तर० १३।१३, १५)

जिस दिन स्नान, दान, होम, स्वाध्याय (वेद-पुराण-पाठ, स्तोत्रमन्त्र-जप) देवपूजन—ये सब कर्म नहीं होते, मनुष्यका वह दिन व्यर्थ है। जो प्रातःकाल अन्न तैयार होता है, वह संध्यातक नष्ट हो जाता है। फिर उसीके रससे पुष्ट इस शरीरकी नित्यता कैसी?

श्रद्धाकी महिमा

धनेन धार्यते धर्मः श्रद्धायुक्तेन चेतसा।
श्रद्धाविहीनो धर्मस्तु नेहामुत्र च वृद्धिभाक्॥
धर्मात् संजायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद् धर्मं समाचरेत्॥
श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः।
अकिंचना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः॥
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पक्षिन् प्रेत्य नेह न तत्फलम्॥

(गरुडपुराण, उत्तर० २। २९—३२)

गरुड़! अत्यन्त श्रद्धायुक्त चित्तसे उपयोग करनेपर ही धनद्वारा धर्मकी प्राप्ति होती है। बिना श्रद्धाके किया गया धर्म इस लोक या परलोकमें कहीं भी फलीभूत नहीं होता। धर्मसे ही अर्थ एवं सुख-भोग प्राप्त होता

है तथा धर्म ही मोक्षका कारण है, अतः धर्मका आचरण करना चाहिये। श्रद्धासे ही धर्म धारण किया जा सकता है, बहुत-सी धन-राशिसे नहीं। जिनके पास कुछ न था—ऐसे ऋषिगण भी श्रद्धासम्पन्न होनेके कारण स्वर्गको प्राप्त हो गये। बिना श्रद्धाके किये गये हवन, दान, तप तथा अन्य भी सभी कर्म असत् कहे जाते हैं और गरुड़! उनका फल न यहाँ मिलता है, न परलोकमें।

अश्रद्धासे कोई फल नहीं

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७। २८)

अर्जुन! अश्रद्धासे किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म होता है, वह सब 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है। वह न तो मरनेके बाद ही और न इस लोकमें ही लाभदायक होता है।

सांख्ययोग और कर्मयोग फलरूपमें एक ही हैं

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ५। ४-५)

संन्यास और कर्मयोगको बाल-बुद्धिके लोग भी पृथक्-पृथक् (फल देनेवाले) बतलाते हैं, न कि विज्ञजन; क्योंकि इनमेंसे एकमें भी सम्यक् प्रकारसे स्थित पुरुष दोनोंके फल (रूप परमात्मा)-को प्राप्त होता है। ज्ञानयोगियोंके द्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, वही कर्मयोगियोंके द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। इसलिये जो पुरुष सांख्य और कर्मयोगको (फलरूपमें) एक देखता है, वही (यथार्थ) देखता है।

संन्यासी कौन है?

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६। १)

जो कर्मके फलको न चाहकर करनेयोग्य कर्म करता है, वही संन्यासी और योगी है और केवल अग्निका त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा न केवल क्रियाओंका त्याग करनेवाला योगी ही है।

निष्कामकर्मयोग

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ४७-४८)

तेरा कर्मोंमें ही अधिकार है, उनके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलकी वासनावाला मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो। धनंजय! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समबुद्धि होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्य-कर्मोंको कर। यह 'समत्व' ही योग कहलाता है।

स्वधर्ममें मरना भी श्रेष्ठ है

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। ३५)

अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए पराये धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्ममें मरना भी श्रेष्ठ है, परंतु पराया धर्म भयकारक है।

ब्राह्मण, गौ, देश आदिके लिये प्राण-त्याग करनेवाला स्वर्गको जाता है

ब्राह्मणार्थे च गुर्वर्थे स्त्रीणां बालवधेषु च।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥
गवार्थे देशविध्वंसे देवतीर्थविपत्सु च।
आत्मानं सम्परित्यज्य स्वर्गवासं लभन्ति ते॥

(गरुडपुराण, उत्तर० २८। १२,१४)

जो ब्राह्मण, गुरु, स्त्री तथा बालकोंकी रक्षामें अपना प्राण छोड़ देता है, वह सभी बन्धनोंसे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। गोरक्षा, देश-विध्वंस, देवता तथा तीर्थोंके ऊपर आपत्ति पड़नेपर प्राणत्याग करनेवाला प्राणी स्वर्गमें वास करता है।

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

(महाभारत, कर्ण० ६९। ५८)

धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे 'धर्म' कहते हैं। इसलिये जो धारण—प्राणरक्षासे युक्त हो—जिसमें किसी भी जीवकी हिंसा न की जाती हो, वही धर्म है। ऐसा ही धर्मशास्त्रोंका सिद्धान्त है।

वर्णाश्रमधर्मका पालन आवश्यक है

मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः।
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत्॥

(श्रीमद्भा० ११। १०। १)

प्यारे उद्धव! साधकको चाहिये कि सब प्रकारसे मेरी शरणमें रहकर (गीता, पांचरात्र आदिमें) मेरे द्वारा उपदिष्ट अपने धर्मोंका सावधानीसे पालन करे।

भगवान् धर्मके पक्षमें हैं

यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णः शक्त्या महामृधे॥
मया वध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्घटोत्कचः।
मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया॥
एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः।
धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः॥

(महाभारत, द्रोण० १८१। २५—२७)

यदि महासमरमें कर्ण अपनी शक्तिद्वारा भीमसेनपुत्र घटोत्कचको नहीं मारता तो एक दिन मुझे उसका वध करना पड़ता। (भीमसेनका पुत्र होनेपर भी वह पापात्मा था। मेरी प्रीति वास्तवमें धर्मसे ही है) तुमलोगोंका प्रिय करनेकी इच्छासे ही मैंने इसे पहले नहीं मारा था। यह ब्राह्मण और यज्ञोंसे द्वेष रखनेवाला तथा धर्मका लोप करनेवाला पापात्मा राक्षस था, इसीलिये इसे मरवा दिया है।

धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया।
ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा॥
यत्र यत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे।

(महाभारत, द्रोण० १८१। २९-३०)

धर्मकी स्थापनाके लिये ही मैंने यह अटल प्रतिज्ञा कर रखी है। मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि जहाँ वेद, सत्य, दम, शौच, धर्म, लज्जा, श्री, धृति और क्षमाका निवास है, वहीं मैं सदा सुखपूर्वक रहता हूँ।

साधारण धर्म

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥

(श्रीमद्भा० ११। १७। २१)

उद्धवजी! चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लिये साधारण धर्म यह है कि मन, वाणी और शरीरसे किसीकी हिंसा न करें, सत्यपर दृढ़ रहें, चोरी न करें, काम, क्रोध तथा लोभसे बचें और जिन कामोंके करनेसे समस्त प्राणियोंकी प्रसन्नता और उनका भला हो, वे ही करें।

ब्राह्मणकी महिमा

ये द्रुह्यन्ति द्विजान् मूढाः सन्ति ते मम शत्रवः॥
ये पूजयन्ति विप्रांश्च मम भावेन भूजनाः।
ते भुञ्जन्ति सुखं चात्र ह्यन्ते यास्यन्ति मत्पदम्॥

(गर्गसंहिता, अश्वमेध० ५५। ५२-५३)

जो अविवेकीजन ब्राह्मणोंसे द्वेष रखते हैं, वे मेरे शत्रु हैं। जो मनुष्य मेरी भावनासे ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, उन्हें संसारमें सुखकी उपलब्धि होती है और अन्तमें वे मेरे धामके अधिकारी होते हैं।

गोदानकी महत्ता

तैस्तैर्गुणैः कामदुघा च भूत्वा
नरं प्रदातारमुपैति सा गौः।
स्वकर्मभिश्चाप्यनुवध्यमानं
तीव्रान्धकारे नरके पतन्तम्।
महार्णवे नौरिव वायुनीता
दत्ता हि गौस्तारयते मनुष्यम्॥
यथौषधं मन्त्रकृतं नरस्य
प्रयुक्तमात्रं विनिहन्ति रोगान्।
तथैव दत्ता कपिला सुपात्रे
पापं नरस्याशु निहन्ति सर्वम्॥

(महाभारत, आश्वमेधिक०, दाक्षिणात्यपाठ)

दानमें दी हुई गौ अपने विभिन्न गुणोंद्वारा कामधेनु बनकर परलोकमें

दाताके पास पहुँचती है। वह अपने कर्मोंसे बँधकर घोर अन्धकारपूर्ण नरकमें गिरते हुए मनुष्यका उसी प्रकार उद्धार कर देती है, जैसे वायुके सहारेसे चलती हुई नाव मनुष्यको महासागरमें डूबनेसे बचाती है। जैसे मन्त्रके साथ दी हुई ओषधि प्रयोग करते ही मनुष्यके रोगोंका नाश कर देती है, उसी प्रकार सुपात्रको दी हुई कपिला गौ मनुष्यके सब पापोंको तत्काल नष्ट कर डालती है।

गौको घास देना महापुण्य है

तीर्थस्थानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
भुवः पर्यटने यत्तु सर्ववाक्येषु यद् भवेत्॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः।
तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म० २१। ८७—८९)

तीर्थ-स्थानोंमें जाकर स्नान-दानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, सम्पूर्ण व्रत-उपवास, सब तपस्या, महादान तथा श्रीहरिकी आराधना करनेपर जो पुण्य सुलभ होता है, सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण वेद-वाक्योंके स्वाध्याय तथा समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ग्रहण करनेपर मनुष्य जिस पुण्यको पाता है, वही पुण्य बुद्धिमान् मानव गौओंको घास देकर पा लेता है।

गौको घास चरनेसे रोकना और गौ-ब्राह्मणको मारना महापाप है

भुक्तवन्तीं तृणं यश्च गां वारयति कामतः।
ब्रह्महत्या भवेत् तस्य प्रायश्चित्ताद् विशुध्यति॥

सर्वे देवा गवामंगे तीर्थानि तत्पदेषु च।
तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः।
तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥
ब्राह्मणानां गवामंगं यो हन्ति मानवाधमः।
ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत् तस्य न संशयः॥
नारायणांशान् विप्रांश्च गाश्च ये घ्नन्ति मानवाः।
कालसूत्रं च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म० २१। ९०—९५)

जो घास चरती हुई गायको स्वेच्छापूर्वक चरनेसे रोकता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है तथा यह प्रायश्चित्त करनेपर ही शुद्ध होता है। पिताजी! सब देवता गौओंके अंगोंमें, सम्पूर्ण तीर्थ गौओंके पैरोंमें तथा स्वयं लक्ष्मी उनके गुह्य स्थानों (मल-मूत्रके स्थानों)-में सदा वास करती हैं। जो मनुष्य गायके पद-चिह्नसे युक्त मिट्टीद्वारा तिलक करता है, उसे तत्काल तीर्थ-स्नानका फल मिलता है और पग-पगपर उसकी विजय होती है। गौएँ जहाँ भी रहती हैं, उस स्थानको तीर्थ कहा गया है। वहाँ प्राणोंका त्याग करके मनुष्य तत्काल मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। जो नराधम ब्राह्मणों तथा गौओंके शरीरपर प्रहार करता है, निःसंदेह उसे ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। जो नारायणके अंशभूत ब्राह्मणों तथा गौओंका वध करते हैं, वे मनुष्य जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतकके लिये 'कालसूत्र' नामक नरकमें जाते हैं।

माता-पिताकी सेवाका महत्त्व

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा॥

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च।
वृत्तिं न दद्यात् तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि॥
मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम्।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन् मृतः॥

(श्रीमद्भा० १०। ४५। ६-७)

यदि कोई मनुष्य सौ वर्षतक जीकर माता और पिताकी सेवा करता रहे, तब भी वह उनके उपकारसे उऋण नहीं हो सकता। जो पुत्र सामर्थ्य रहते भी अपने माँ-बापकी शरीर और धनसे सेवा नहीं करता, उसके मरनेपर यमदूत उसे उसके अपने शरीरका मांस खिलाते हैं। जो पुरुष समर्थ होकर भी बूढ़े माता-पिता, सती पत्नी, बालक-संतान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागतका भरण-पोषण नहीं करता, वह जीता हुआ भी मुर्देके समान ही है।

पितृमातृसमं लोके नास्त्यन्यद् दैवतं परम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् पितरौ सदा॥
हितानामुपदेष्टा हि प्रत्यक्षं दैवतं पिता।
अन्या या देवता लोके न देहप्रभवा हि ताः॥
शरीरमेव जन्तूनां स्वर्गमोक्षैकसाधनम्।
शरीरं सम्पदो दाराः सुता लोकसनातनाः॥
यस्य प्रसादात् प्राप्यन्ते कोऽन्यः पूज्यतमस्ततः।

(गरुडपुराण, उत्तर० ११। ३४—३७)

वस्तुतः माता-पिताके समान इस संसारमें कोई श्रेष्ठ देवता नहीं है। अतएव सब प्रकारसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पिता हितका उपदेश करनेवाला प्रत्यक्ष देवता है। संसारमें जो दूसरे देवी-देवता हैं, वे शरीरके प्रदान करनेवाले नहीं हैं। शरीर ही जीवके स्वर्ग तथा मोक्षका एकमात्र साधन है। जिनकी कृपासे शरीर, धन, स्त्री, पुत्र और सनातन लोक—सभी मिले हैं, उनसे बढ़कर पूज्यतम भला और कौन हो सकता है?

माता-पिता-गुरुकी महिमा

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेव च।
यो न पुष्णाति पुरुषो यावज्जीवं च सोऽशुचिः॥
सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महान् गुरुः।
पितुः शतगुणा माता गर्भधारणपोषणात्॥
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी।
नास्ति मातुः परो बन्धुः सर्वेषां जगतीतले॥
विद्यामन्त्रप्रदः सत्यं मातुः परतरो गुरुः।
न हि तस्मात्परः कोऽपि वन्द्यः पूज्यश्च वेदतः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म० ७२। १०९—११२)

जो पुरुष पिता और माताका तथा विद्यादाता एवं मन्त्रदाता गुरुका पोषण नहीं करता, वह जीवनभर पापसे शुद्ध नहीं होता। समस्त पूजनीयोंमें पिता वन्दनीय महान् गुरु है, परंतु माता गर्भमें धारण एवं पोषण करती है, इसलिये पितासे भी सौगुनी श्रेष्ठ है। माता पृथ्वीके समान क्षमाशीला और सबका समानरूपसे हित चाहनेवाली है, अतः भूतलपर सबके लिये मातासे बढ़कर बन्धु दूसरा कोई नहीं है। साथ ही यह भी सत्य है कि विद्यादाता और मन्त्रदाता गुरु मातासे भी बहुत बढ़-चढ़कर आदरके योग्य हैं। वेदके अनुसार गुरुसे बढ़कर वन्दनीय और पूजनीय दूसरा कोई नहीं है।

जैसा चिन्तन, वैसा ही परिणाम

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥
तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम्।
हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २७-२८)

जो पुरुष निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है उसका चित्त

विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है,उसका चित्त मुझमें तल्लीन हो जाता है। इसलिये तुम दूसरे साधनों और फलोंका चिन्तन छोड़ दो। अरे भाई! मेरे अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, जो कुछ जान पड़ता है, वह ठीक वैसा ही है जैसे स्वप्न अथवा मनोरथका राज्य। इसलिये मेरे चिन्तनसे तुम अपना चित्त शुद्ध कर लो और उसे पूरी तरहसे—एकाग्रतासे मुझमें ही लगा दो।

विषय-चिन्तन ही सर्वनाशमें कारण है

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ६२-६३)

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे अत्यन्त मूढभाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेपर यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है—उसका सर्वनाश हो जाता है।

दूसरोंकी निन्दा-स्तुति करनेवाले साधनसे गिर जाते हैं

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च॥
परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः॥

(श्रीमद्भा० ११। २८। १-२)

उद्धवजी! यद्यपि व्यवहारमें पुरुष और प्रकृति—द्रष्टा और दृश्यके भेदसे दो प्रकारका जगत् जान पड़ता है, तथापि परमार्थ-दृष्टिसे देखनेपर

यह सब एक अधिष्ठानस्वरूप ही है, इसलिये किसीके शान्त, घोर और मूढ स्वभाव तथा उनके अनुसार कर्मोंकी न स्तुति करनी चाहिये और न निन्दा। सर्वदा अद्वैत-दृष्टि रखनी चाहिये। जो पुरुष दूसरोंके स्वभाव और उनके कर्मोंकी प्रशंसा अथवा निन्दा करते हैं, वे शीघ्र ही अपने यथार्थ परमार्थसाधनसे च्युत हो जाते हैं, क्योंकि साधन तो द्वैतके अभिनिवेशका—उसके प्रति सत्यत्वबुद्धिका निषेध करता है और प्रशंसा तथा निन्दा उसकी सत्यताके भ्रमको और भी दृढ़ करती है।

मित्रका धर्म

व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते।
अनुनीय यथाशक्ति तं नृशंसं विदुर्बुधाः॥
आकेशग्रहणान्मित्रमकार्यात् संनिवर्तयन्।
अवाच्यः कस्यचिद् भवति कृतयत्नो यथाबलम्॥

(महाभारत, उद्योग० ९३। १०-११)

जो किसी व्यसन या विपत्तिमें पड़कर क्लेश उठाते हुए मित्रको यथाशक्ति समझा-बुझाकर उसका उद्धार नहीं करता है; उसे विद्वान् पुरुष निर्दय एवं क्रूर मानते हैं। जो अपने मित्रको उसकी चोटी पकड़कर भी बुरे कार्यसे हटानेके लिये यथाशक्ति प्रयत्न करता है, वह किसीकी निन्दाका पात्र नहीं होता है।

यो मित्रतां निष्कपटं करोति
निष्कारणो धन्यतमः स एव।
विधाय मैत्रीं कपटं विदध्यात्
तं लम्पटं हेतुपटं नटं धिक्॥

(गर्गसंहिता, मथुरा० ४। १९)

जो किसी बातकी कामना नहीं रखता और शुद्धान्तःकरण हो मित्रता स्थापित करता है, वही अनेकशः धन्यवादका पात्र है। जो मैत्री करके हृदयमें कपट रखता है, वह तो महाधूर्त है। उसने तो कार्यवश स्वाँग रच लिया है—ऐसे नट (मित्र)-को धिक्कार है।

पाण्डवबन्धु श्रीकृष्ण

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥
कामक्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद् विरुरुत्सति।
गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम्॥

(महाभारत, उद्योग० ९१। २८-२९)

जो पाण्डवोंसे द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। तुम मुझे धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ एकरूप हुआ ही समझो। जो काम और क्रोधके वशीभूत होकर मोहवश किसी गुणवान् पुरुषके साथ विरोध करना चाहता है; उसे पुरुषोंमें अधम कहा गया है।

ममैव त्वं तवैवाहं ये मदीयास्तवैव ते।
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु॥

(महाभारत, वन० १२। ४५)

पार्थ! तुम मेरे ही हो, मैं तुम्हारा ही हूँ। जो मेरे हैं, वे तुम्हारे ही हैं। जो तुमसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी द्वेष रखता है, जो तुम्हारे अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है।

असंतोषी ही दरिद्र है

दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः।
गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः॥

(श्रीमद्भा० ११। १९। ४४)

जिसके चित्तमें असंतोष है, अभावका बोध है, वही 'दरिद्र' है। जो जितेन्द्रिय नहीं है, वही 'कृपण' है। समर्थ, स्वतन्त्र और 'ईश्वर' वह है, जिसकी चित्तवृत्ति विषयोंमें आसक्त नहीं है। इसके विपरीत जो विषयोंमें आसक्त है, वही सर्वथा 'असमर्थ' है।

संतोषके बिना सुख नहीं

असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः।
अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वांगविज्वरः॥

(श्रीमद्भा० १०। ५२। ३२)

यदि इन्द्रका पद पाकर भी किसीको संतोष न हो तो उसे सुखके लिये एक लोकसे दूसरे लोकमें बार-बार भटकना पड़ेगा, वह कहीं भी शान्तिसे बैठ नहीं सकेगा। परंतु जिसके पास तनिक भी संग्रह-परिग्रह नहीं है और जो उसी अवस्थामें संतुष्ट है, वह सब प्रकारसे संतापरहित होकर सुखकी नींद सोता है।

तृष्णा

इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते।
कर्तुं लक्षाधिपती राज्यं राज्येऽपि सकलचक्रवर्तित्वम्॥
चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरत्वलाभे सकलसुरपतित्वम्।
भवितुं सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्तते तृष्णा॥

(गरुडपुराण, उत्तर० २। १४-१५)

गरुड़जी! तृष्णाकी बात ही निराली है। शताधिपति सहस्राधिपति बनना चाहता है और सहस्राधीश लक्षाधीश। लक्षाधीशको राज्यकी कामना होती है और राज्य मिल जानेपर उसमें सम्पूर्ण विश्वके चक्रवर्ती साम्राज्यकी अभिलाषा उदय होती है। चक्रवर्ती साम्राज्य हो जानेपर वह देवता बनना चाहता है और देवत्व लाभ होनेपर इन्द्र। इन्द्र बन जानेपर भी उससे ऊँचे पदोंकी लालसा बनी ही रहती है। कहाँतक कहा जाय, यह तृष्णा कभी निवृत्त नहीं होती। वास्तवमें जो इस तृष्णासे मुक्त हैं, वे ही सच्चे मुक्त हैं।

किन कर्मोंसे बन्धन होता है?

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। ९)

यज्ञके (भगवत्सेवा या भगवान्‌के) लिये किये जानेवाले कर्मोंसे अतिरिक्त दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ यह मनुष्य-समुदाय कर्म-बन्धनसे बँध जाता है। इसलिये अर्जुन! तू आसक्तिरहित होकर उस यज्ञके लिये ही कर्मका भलीभाँति आचरण कर।

विषयासक्तिकी निवृत्ति कब होती है?

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ५९)

निराहारी (इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले) पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाला रस (विषयासक्ति) निवृत्त नहीं होता। परमात्माका साक्षात्कार करनेपर पुरुषकी विषयासक्ति भी निवृत्त हो जाती है।

स्त्री-संगसे बड़ी हानि

स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्।
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः॥
न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसंगतः।
योषित्संगाद् यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २९-३०)

संयमी पुरुष स्त्रियों और उनके प्रेमियोंका संग दूरसे ही छोड़कर, पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर बड़ी सावधानीसे मेरा ही चिन्तन करे। प्यारे उद्धव! स्त्रियोंके संगसे और स्त्री-संगियोंके—लम्पटोंके संगसे पुरुषको जैसे क्लेश और बन्धनमें पड़ना पड़ता है, वैसा क्लेश और बन्धन और किसीके भी संगसे नहीं होता।

स्त्री-महिमा

जामयो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते विनङ्क्ष्यत्याशु तद् गृहम्॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव सद्यो यान्ति पराभवम्॥
अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिव राशयः।
रतेरिव निधानानि योषितः तेन निर्मिताः॥

(भविष्यपुराण १७१। २—४)

जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है, वहाँ देवतागण रमण करते हैं और जहाँ इनकी पूजा नहीं होती, वह घर शीघ्र ही चौपट हो जाता है। स्त्रियाँ तिरस्कृत होकर जिन घरोंको शाप देती हैं, वे कृत्या राक्षसीके द्वारा हत होनेकी तरह दुर्दशाग्रस्त हो जाते हैं। स्त्रियाँ मानो अमृतके कुण्ड अथवा सुखकी राशि ही हैं। ब्रह्माने इन्हें सम्पूर्ण आनन्दके निधानके रूपमें ही रचा है।

सती-महिमा

नारी भर्तारमासाद्य कुणपं दहते यदि।
अग्निर्दहति गात्राणि ह्यात्मानं नैव पीडयेत्॥
दह्यते धम्यमानानां धातूनां हि यथा मलम्।
तथा नारी दहेद् देहो हुताशे ह्यमृतोपमे॥

(गरुडपुराण, उत्तर० १६।४८-४९)

पतिव्रता स्त्री यदि अपने पतिके साथ अपने शरीरको जला डालती है, तो धर्मके प्रभावसे अग्नि यद्यपि उसके शरीरको जलाता हुआ-सा दीखता है तथापि उसे कोई पीड़ा नहीं होती। (उसके लिये वह आग अमृतके समान सुखद तथा शीतल हो जाती है।) जिस प्रकार धातुको अग्निमें डाल देनेसे केवल उसका मल जल जाता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री अमृतोपम अग्निमें अपने मलवत् शरीरका ही दाह करती है।

नरकके तीन द्वार—काम, क्रोध, लोभ

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १६।२१)

काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले हैं, इसलिये इन तीनोंका त्याग करना चाहिये।

काम-क्रोध ही पापमें कारण हैं

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। ३७)

रजोगुण (विषयासक्तिरूप रज—राग)-से उत्पन्न यह काम ही (प्रतिहत होनेपर) क्रोध बनता है, यह काम (विषयोंकी कामना) बहुत खानेवाला (भोगोंसे कभी न अघानेवाला) और बड़ा पापी है, इसीको तू इस विषयमें वैरी जान।

काम-क्रोधसे नरकप्राप्ति

कुकर्मविहितो घोरे कामक्रोधार्जितेऽशुभे।
नरके पतितो भूयो यस्योत्तारो न विद्यते॥

(गरुडपुराण, उत्तर० ३४। ३५)

काम-क्रोधयुक्त अशुभ कर्मोंके (अर्जन) करनेपर मनुष्य ऐसे घोर नरकमें गिरता है, जहाँसे उद्धारकी सम्भावना ही नहीं होती।

क्षत्रियधर्म

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥
यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ३१-३२)

अर्जुन! अपने (क्षत्रिय-) धर्मको देखकर भी तुझे युद्धसे काँप जाना नहीं चाहिये, क्योंकि क्षत्रियके लिये धर्मरूप युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। पार्थ! अपने-आप प्राप्त यह

(स्वधर्मरूप युद्ध) स्वर्गके खुले हुए द्वाररूप हैं। इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान् क्षत्रिय ही पाते हैं।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ३७)

यदि तू युद्धमें मारा गया तो स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा संग्राममें जीतकर पृथ्वीका राज्य भोगेगा। इस कारण कुन्तीपुत्र अर्जुन! तू युद्धके लिये निश्चय करके खड़ा हो जा।

स्वर्गं ह्येव समास्थाय रणयज्ञेषु दीक्षिताः।
जयन्ति क्षत्रिया लोकांस्तद् विद्धि मनुजर्षभ॥
स्वर्गयोनिर्महद् ब्रह्म स्वर्गयोनिर्महद्यशः।
स्वर्गयोनिस्तपो युद्धे मृत्युः सोऽव्यभिचारवान्॥
एष ह्यैन्द्रो वैजयन्तो गुणैर्नित्यं समाहितः।

(महाभारत, सभा० २२। १७—१९)

नरश्रेष्ठ! स्वर्गप्राप्तिका ही उद्देश्य रखकर रणयज्ञकी दीक्षा लेनेवाले क्षत्रिय अपने अभीष्ट लोकोंपर विजय पाते हैं। यह बात तुम्हें भलीभाँति जाननी चाहिये। वेदाध्ययन स्वर्गप्राप्तिका कारण है, परोपकाररूप महान् यश भी स्वर्गका हेतु है, तपस्याको भी स्वर्गलोकका साधन बताया गया है, परंतु क्षत्रियके लिये इन तीनोंकी अपेक्षा युद्धमें मृत्युका वरण करना ही स्वर्गप्राप्तिका अमोघ साधन है। क्षत्रियका यह युद्धमें मरण इन्द्रका वैजयन्त नामक प्रासाद (राजमहल) है। यह सदा सभी गुणोंसे परिपूर्ण है।

जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्टः सनातनः।
स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते॥

(महाभारत, उद्योग० ७३। ४)

क्षत्रियके लिये विधाताने यही सनातन कर्तव्य बताया है कि वह संग्राममें विजय प्राप्त करे अथवा वहीं प्राण दे दे। यही क्षत्रियका स्वधर्म है। दीनता अथवा कायरता उसके लिये प्रशंसाकी वस्तु नहीं है।

सुभद्राके प्रति क्षात्रधर्मकी महत्ताका कथन

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा।
मा शुचः स्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम्॥

(महाभारत, द्रोण० ७७। १७)

सुभद्रे! तुम वीरमाता, वीरपत्नी, वीरकन्या और वीर भाइयोंकी बहिन हो। तुम पुत्रके लिये शोक न करो। वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है।

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम्।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः॥
व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत्।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि॥
अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान्।
सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः॥

(महाभारत, द्रोण० ७७। २१—२३)

शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रिय-धर्मको आगे रखकर सत्पुरुषोंकी गति पायी है, जिसे हमलोग और इस संसारके दूसरे शस्त्रधारी क्षत्रिय भी पाना चाहते हैं। सुन्दरी ! चौड़ी छाती और विशाल भुजाओंसे सुशोभित, युद्धसे पीछे न हटनेवाला तथा शत्रुपक्षके रथियोंपर विजय पानेवाला तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोकमें गया है। तुम चिन्ता छोड़ो। बलवान्, शूरवीर और महारथी अभिमन्यु पितृकुल तथा मातृकुलकी मर्यादाका अनुसरण करते हुए सहस्रों शत्रुओंको मारकर मरा है।

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पांचाल्याश्वासयोत्तराम्।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुंगवः॥
ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने।
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः॥
कुर्याम तद् वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः।
कृतवान् यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः॥

(महाभारत, द्रोण० ७८। ४०—४२)

सुभद्रे! तुम पुत्रके लिये शोक न करो। द्रुपदकुमारी! तुम उत्तराको धीरज बँधाओ। वह क्षत्रिय-शिरोमणि सर्वश्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ है। सुमुखि! हमारी इच्छा तो यह है कि हमारे कुलमें और भी जितने पुरुष हैं, वे सभी यशस्वी अभिमन्युकी ही गति प्राप्त करें। तुम्हारे महारथी पुत्रने अकेले ही आज जैसा पराक्रम किया है, उसे हम और हमारे सुहृद् भी कार्यरूपमें परिणत करें।

शत्रुके घरमें प्रवेश कैसे करें?

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान्।
प्रविशन्ति नरा धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः॥

(महाभारत, सभा० २१। ५३)

धीर मनुष्य शत्रुके घरमें बिना दरवाजेके और मित्रके घरमें दरवाजेसे जाते हैं। शत्रु और मित्रके लिये ये धर्मतः द्वार बतलाये गये हैं।

प्रबल और सुसंगठित शत्रुको जीतनेका उपाय

ते वयं नयमास्थाय शत्रुदेहसमीपगाः।
कथमन्तं न गच्छेम वृक्षस्येव नदीरयाः॥
पररन्ध्रे पराक्रान्ताः स्वरन्ध्रावरणे स्थिताः।
व्यूढानीकैरतिबलैर्न युद्ध्येदरिभिः सह।
इति बुद्धिमतां नीतिस्तन्ममापीह रोचते॥
अनवद्या ह्यसम्बुद्धाः प्रविष्टाः शत्रुसद्म तत्।
शत्रुदेहमुपाक्रम्य तं कामं प्राप्नुयामहे॥

(महाभारत, सभा० १७। ६—८)

जब हमलोग नीतिका आश्रय लेकर शत्रुके शरीरके निकटतम पहुँच जायँगे, तब जैसे नदीका वेग किनारेके वृक्षको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार हम शत्रुका अन्त क्यों न कर डालेंगे। हम अपने छिद्रोंको छिपाये रखकर शत्रुके छिद्र देखते और अवसर मिलते ही उसपर बलपूर्वक आक्रमण कर देंगे। जिनकी सेनाएँ मोर्चे बाँधकर खड़ी हों और जो

अत्यन्त बलवान् हों, ऐसे शत्रुओंके साथ (सम्मुख होकर) युद्ध नहीं करना चाहिये, यह बुद्धिमानोंकी नीति है; यही नीति मुझे भी अच्छी लगती है! यदि हम छिपे-छिपे शत्रुके घरमें पहुँच जायँ तो यह हमारे लिये कोई निन्दाकी बात नहीं होगी। फिर हम शत्रुके अंगपर आक्रमण करके अपना काम (सहज ही) बना लेंगे।

किसको मारना धर्म है?

निकृत्योपचरन् वध्य एष धर्मः सनातनः।

(महाभारत, वन० १२। ७)

जो दूसरेके साथ छल-कपट अथवा धोखा करके सुख भोग रहा हो, उसे मार डालना चाहिये। यह सनातन धर्म है।

लुटेरोंसे रक्षाके लिये असत्य बोलना भी उचित है

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित्।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत् कथंचन॥
अवश्यं कूजितव्ये वा शंकरेन्नप्यकूजतः।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम्॥

(महाभारत, कर्ण० ६९। ५९-६०)

जो लोग अन्यायपूर्वक दूसरोंके धन आदिका अपहरण कर लेना चाहते हैं, वे कभी अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंसे सत्यभाषणरूप धर्मका पालन कराना चाहते हों तो वहाँ उनके समक्ष मौन रहकर उनसे पिण्ड छुड़ानेकी चेष्टा करे, किसी तरह कुछ बोले ही नहीं, किंतु यदि बोलना अनिवार्य हो जाय अथवा न बोलनेसे लुटेरोंको संदेह होने लगे, तो वहाँ असत्यको ही बिना विचारे सत्य समझे।

कैसे सभासद् नष्ट हो जाते हैं?

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥
विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते।

न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः॥
धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान्।

(महाभारत, उद्योग० ९५। ४८—५०)

जहाँ सभासदोंके देखते-देखते अधर्मके द्वारा धर्मका और मिथ्याके द्वारा सत्यका गला घोंटा जाता हो, वहाँ वे सभासद् नष्ट हुए माने जाते हैं। जिस सभामें अधर्मसे विद्ध हुआ धर्म प्रवेश करता है और सभासद्गण उस अधर्मरूपी काँटेको काटकर निकाल नहीं देते हैं, वहाँ उस काँटेसे सभासद् ही बिंधे जाते हैं (अर्थात् उन्हें ही अधर्मसे लिप्त होना पड़ता है)। जैसे नदी अपने तटपर उगे हुए वृक्षोंको गिराकर नष्ट कर देती है, उसी प्रकार वह अधर्मविद्ध धर्म ही उन सभासदोंका नाश कर डालता है।

किसीके घर भोजन किस कारण किया जाता है?

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥

(महाभारत, उद्योग० ९१। २५)

दुर्योधन! किसीके घरका अन्न या तो प्रेमके कारण भोजन किया जाता है या आपत्तिमें पड़नेपर (भूखों मरनेपर)। नरेश्वर! प्रेम तो तुम नहीं रखते और किसी आपत्तिमें हम पड़े नहीं हैं।

गृहस्थाश्रमकी महिमा

न गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नास्ति दानं गृहात् परम्।
नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात् परः॥
न गृहेण विना धर्मो नार्थकामौ सुखं न च।
न लोकपङ्क्तिर्न यशः प्राप्यते त्रिदशैरपि॥

(भविष्यपुराण, उत्तर० १६८। ३, ६)

गृहस्थाश्रमसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। गृहदानसे बढ़कर कोई दान

नहीं है। झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं है और ब्राह्मणसे बढ़कर कोई पूज्य नहीं है। घरके बिना धर्म, अर्थ, काम, सुख, यश और दूसरे प्रकारकी भी कोई लौकिक सफलता मनुष्यको तो क्या देवताओंको भी नहीं प्राप्त हो सकती।

स्नानकी आवश्यकता

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न युज्यते।
तस्मात् कायविशुद्‌ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते॥
अनुद्धतैरुद्धतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्।
तीर्थंप्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥
नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः॥

(भविष्यपुराण, उत्तर० १२३। १—३)

स्नानके बिना चित्तकी निर्मलता और भावशुद्धि नहीं आती। अतएव शरीरकी शुद्धिके लिये सर्वप्रथम स्नानका ही विधान है। नदी आदिमें जलमें प्रवेशकर और कूप आदिपर जलको बाहर निकालकर स्नान करना चाहिये। मन्त्रज्ञ विद्वान्‌को मूलमन्त्रसे तीर्थकी कल्पना करनी चाहिये। तीर्थ-निर्माणका मूलमन्त्र '**ॐ नमो नारायणाय**' कहा गया है।

समझ-बूझकर कर्म करनेवाले सफल होते हैं

ज्ञात्वाज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति।
विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा नाविदुषो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० १०। २४। ६)

यह संसारी मनुष्य समझे-बे-समझे अनेकों प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करता है। उनमेंसे समझ-बूझकर करनेवाले पुरुषोंके कर्म जैसे सफल होते हैं, वैसे बेसमझके नहीं।

कर्मानुसार ही फलकी प्राप्ति

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते॥

(श्रीमद्भा० १०। २४। १३)

पिताजी! प्राणी अपने कर्मके अनुसार ही पैदा होता और कर्मसे ही मर जाता है। उसे उसके कर्मके अनुसार ही सुख-दुःख, भय और मंगलके निमित्तोंकी प्राप्ति होती है।

कुश्ती समान बलवानोंमें होती है

भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्ल सभासदः॥

(श्रीमद्भा० १०। ४३। ३८)

कुश्ती समान बलवालोंके साथ ही होनी चाहिये, जिससे देखनेवाले सभासदोंको अन्यायके समर्थक होनेका पाप न लगे।

श्रेष्ठ पुरुषोंकी लोग नकल करते हैं

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। २१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, दूसरे लोग भी उसीका अनुकरण करके वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह (अपने आचरणद्वारा) जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।

पाँच प्रकारकी शुद्धि

मनश्शौचं कर्मशौचं कुलशौचं च भारत।
शरीरशौचं वाक्छौचं शौचं पंचविधं स्मृतम्॥
पंचस्वेतेषु शौचेषु हृदि शौचं विशिष्यते।
हृदयस्य च शौचेन स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः॥

(महाभारत, आश्वमेधिक० दाक्षिणात्यपाठ)

मनःशुद्धि, क्रियाशुद्धि, कुलशुद्धि, शरीरशुद्धि और वाक्शुद्धि—इस तरह पाँच प्रकारकी शुद्धि बतायी गयी है। इन पाँचों शुद्धियोंमें हृदयकी शुद्धि सबसे बढ़कर है। हृदयकी ही शुद्धिसे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं।

जीते-जी अपना कल्याण-कार्य कर लेना चाहिये

तावत् स बन्धुः स पिता यावज्जीवति भारत।
मृतो मृत इति ज्ञात्वा क्षणात् स्नेहो निवर्तते॥
तस्मात् स्वयं प्रदातव्यं शय्याभोज्यजलादिकम्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति संचिन्त्य चेतसि॥
आत्मैष यो हि नात्मानं दानभोगैः समर्चयेत्।
कोऽन्यो हिततरस्तस्मात् कः पश्चात् पूरयिष्यति॥

(भविष्यपुराण, उत्तर० १८४। ३—५)

तभीतक मनुष्य अपने परिवारवालोंका भाई-बन्धु और पिता बना रहता है। जबतक वह जीवित बना रहता है। मरनेपर उसे मृत समझकर सभी तत्काल अपना स्नेह खींच लेते हैं। इसलिये मनुष्यको स्वयं ही अपने लिये अन्न, जल और शय्या आदिका दान करना चाहिये। मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है, इसे हृदयमें स्मरण रखना चाहिये। जो दान, धर्म और भोग आदिके द्वारा स्वयं अपना कल्याण नहीं करता तो फिर उसके मरनेके बाद उसके लिये दूसरा कोई क्या व्यवस्था कर सकता है?

जीव अकेला ही आता-जाता है

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥

(गरुडपुराण, उत्तर० २। २२-२३)

जीव अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है एवं वह अपने पाप-पुण्य भी अकेला ही भोगता है। उसके मृत शरीरको मिट्टी और काष्ठके समान छोड़कर उसके सभी बान्धव वापस लौट आते हैं, केवल धर्म ही उसके साथ जाता है।

बड़ोंका अपमान ही उनका वध करना है

त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम्।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत॥

(महाभारत, कर्ण० ६९। ८३)

पार्थ! तुम युधिष्ठिरको सदा 'आप' कहते आये हो, आज उन्हें 'तू' कह दो। भारत! यदि किसी गुरुजनको 'तू' कह दिया जाय, तो यह साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें उसका वध ही हो जाता है।

अपने मुँह अपना गुणगान करना ही आत्महत्या है

युधिष्ठिरका तिरस्कार करनेपर, आत्मग्लानि होनेपर अर्जुन आत्महत्याके लिये तैयार हो गये। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—

ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मन-
स्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ।

(महाभारत, कर्ण० ७०। २८ $\frac{१}{२}$)

पार्थ! अब तुम यहाँ अपनी ही वाणीद्वारा अपने गुणोंका वर्णन करो। ऐसा करनेपर यह मान लिया जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपने आत्माकी हत्या कर ली।

तीन दान श्रेष्ठ हैं

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
आसप्तमं पुनन्त्येते दोहवाहनवेदनैः॥

(भविष्यपुराण १५१। १८)

दानोंमें तीन दान अत्यन्त श्रेष्ठ हैं—गोदान, पृथ्वीदान और विद्यादान। ये दूहने, जोतने और जाननेसे सात कुलतक पवित्र कर देते हैं।

धनका सदुपयोग दानमें ही है

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥

आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥
नोपभोगैः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः।
पूर्वार्जितानामन्यत्र सुकृतानां परिक्षयात्॥

(भविष्यपुराण १५१। ८,११,१२)

जिस पुरुषके सभी दिन धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गसे रहित होकर आते और चले जाते हैं, वह मनुष्य लोहारकी भाथीके समान श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है। सैकड़ों प्रकारके प्रयत्न एवं श्रमसे कमाये हुए तथा प्राणोंसे भी प्यारे धनका दान ही उसकी एकमात्र गति है। इस धनका अन्य प्रयोग तो विपत्तियाँ हैं। जबतक पहलेका पुण्य रहता है तबतक भोग और दान करनेसे भी धन समाप्त नहीं होता। किंतु पुण्योंके क्षय होनेपर वह बिना दान-भोग किये हुए भी नष्ट हो जाता है।

दान न करनेवाला दरिद्र तथा पापी होता है

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्री
दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति
पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥

(गरुडपुराण, उत्तर० १४। १९)

जो दान नहीं देता, वह दरिद्र होता है और दरिद्र होकर उसे विवश होकर पाप करना पड़ता है। पापोंके प्रभावसे वह नरकमें जाता है और नरकसे निकलनेपर फिर दरिद्र तथा पापी ही होता है। इस तरह वह भारी कुचक्रमें फँस जाता है।

विद्यार्थियोंकी सहायताका महत्त्व

छात्राणां भोजनाभ्यंगं वस्त्रभिक्षामथापि वा।
दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः सर्वकामान् न संशयः॥

विवेको जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थसम्पदः।
सर्वं तेन भवेद् दत्तं छात्राणां पोषणे कृते॥

(भविष्यपुराण १७४। १८-१९)

जो मनुष्य छात्रोंके भोजन, अभ्यंग (तेल), वस्त्र और भिक्षा आदिकी व्यवस्था करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। छात्रोंके पोषण करनेपर विवेक (ज्ञान), दीर्घायु, धर्म, काम और सभी सम्पत्तियोंके देनेका फल मिल जाता है।

देहकी अन्तिम शोचनीय अवस्थाएँ

त्रिधावस्थास्य देहस्य कृमिविड्भस्मरूपतः।
को गर्वः क्रियते तार्क्ष्य क्षणविध्वंसिभिर्नरैः॥

(गरुडपुराण, उत्तर० ५। २४)

गरुडजी! इस शरीरकी बस, तीन प्रकारकी ही अवस्थाएँ हैं—कृमि, विष्ठा और भस्म। पृथ्वीमें गाड़ दिये जानेपर इसमें कीड़े पड़ जाते हैं, यह कृमिरूप हो जाता है। बाहर या जलमें फेंके जानेपर मगर, घड़ियाल, कौवे, कुत्ते, सियार, गीध आदि जीव इसे खाकर विष्ठा कर डालते हैं तथा आगमें जला डालनेपर यह भस्म हो जाता है। ऐसे क्षणभंगुर शरीरपर मनुष्यके गर्वका क्या अर्थ है?

तीर्थका फल और उसका अधिकारी

यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयते।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठाश्च पंचैते न तीर्थफलभागिनः॥

(भविष्यपुराण, उत्तर० १२२। ७-८)

जिसके हाथ, पैर, मन और वाणी सुसंयत हैं तथा जिसकी विद्या, कीर्ति और तपस्या पूरी है, उसे ही तीर्थका फल मिलता है। श्रद्धारहित,

पापी, संशयग्रस्त, नास्तिक और तार्किक—इन पाँच प्रकारके मनुष्योंको तीर्थका फल नहीं मिलता।

पाँच पदार्थ कभी हेय नहीं होते

विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी न खगेश्वर।
नैते निर्माल्यतां यान्ति योज्यमानाः पुनः पुनः॥

(गरुडपुराण, उत्तर० १९। २०)

ब्राह्मण, मन्त्र, कुशा, अग्नि तथा तुलसी—ये सब बार-बार प्रयुक्त किये जानेपर भी निर्माल्यताको नहीं प्राप्त होते—उच्छिष्ट अथवा हेय नहीं होते।

असार-संसारके छः सार पदार्थ

विष्णुरेकादशी गंगा तुलसीविप्रधेनवः।
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी॥

(गरुडपुराण, उत्तर० १९। २३)

भगवान् विष्णु, एकादशी-व्रत, गंगानदी, तुलसी, ब्राह्मण और गौएँ—ये छः इस दुर्गम असार-संसारमें मुक्ति देनेवाली वस्तुएँ हैं।

भगवान्‌को प्रणाम करनेवाले निर्भय होते हैं

अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्॥

(गरुडपुराण, उत्तर० ४। ५१)

अतसी (तीसी)-के पुष्पके समान कान्तिवाले, पीताम्बरधारी, गौओंके स्वामी भगवान् अच्युतको जो प्रणाम करते हैं, उन्हें कोई भी भय नहीं होता।

सर्वधर्मान् परित्यज्य

(१)

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रके रणांगणमें अर्जुन मोहग्रस्त होकर जब धनुष-बाण छोड़कर रथके पिछले भागमें बैठ गये, तब भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'भैया अर्जुन! तुझे इस असमयमें यह मोह किस हेतुसे हो गया? यह न तो श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा आचरित है, न स्वर्गदायक है और न कीर्ति ही करनेवाला है। पार्थ! तू नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। परंतप! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर तू युद्धके लिये उठ खड़ा हो।'

इससे भगवान्ने स्पष्ट शब्दोंमें ही युद्धके लिये आज्ञा दे दी; परंतु अर्जुन तैयार नहीं हुए और उन्होंने अपनी मानसिक स्थितिके कारणोंका निर्देश करते हुए कहा कि 'मेरे लिये जो कल्याणकारक निश्चित साधन हो, वह मुझे बतलाइये। मैं आपका शिष्य हूँ, शरणागत हूँ। मुझ दीनको आप शिक्षा दीजिये'—'**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥**'

अर्जुन भगवान्के प्रिय सखा थे, आहार-विहारमें साथ रहते थे, पर न तो कभी अर्जुनने शरणागत होकर कुछ पूछा, न भगवान्ने ही कुछ कहा। आज कहनेका अवसर उपस्थित हो गया। परंतु भगवान् कुछ कहते, इससे पहले ही अर्जुनने अपना मत प्रकट कर दिया, 'मैं युद्ध नहीं करूँगा'—'**न योत्स्ये**'। अर्जुन यदि यह न कहते तो शायद भगवान्ने गीताके अन्तमें जो '**सर्वधर्मान् परित्यज्य**' का सर्वगुह्यतम उपदेश दिया है, अभी दे देते; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुन अत्यन्त प्रिय थे। उनका सारा भार वे उठा लेना चाहते थे। वे स्वयं साध्य-साधन बनकर अर्जुनको निश्चिन्त कर देना चाहते थे। परंतु भगवान्की कृपा तथा मंगल-विधानसे ही अर्जुन बोल उठे—और इससे अर्जुनको शरणागतके लिये पूर्णरूपसे प्रस्तुत न देखकर भगवान्ने कर्म, भक्ति, ज्ञानकी त्रिविध सुधाधारा बहायी। नहीं तो, शायद जगत् इस महान् गीता-ज्ञान-सुधा-रससे वंचित ही रहता! अस्तु!

भगवान्ने गीतामें गुह्य-से-गुह्य ज्ञानका उपदेश किया। जगत्के विविध क्षेत्रोंके सभी अधिकारियोंके लिये यह महान् दिव्य शिक्षा प्रस्तुत हो गयी। ज्ञानयोगी, भक्तियोगी, कर्मयोगी ही नहीं, संसारके विविध उलझनोंमें फँसे हुए तमोग्रस्त सभी लोगोंके लिये गीता दिव्य प्रकाशस्तम्भ बनकर सभीको उनके अधिकारानुसार पथ-प्रदर्शन करने लगी। इसीसे अरण्यवासी विरक्त साधुके हाथमें भी गीता रहती है और क्रान्तिकारी युवकके हाथमें भी गीता है। दोनों ही उससे प्रकाश पाते हैं। गीताके उपदेशमें बीच-बीचमें भगवान्ने अत्यन्त रहस्यमय गुह्यतम बातें भी कहीं—जैसे 'राजविद्याराजगुह्य'-रूप नवम अध्यायमें स्वयं सारे योग-क्षेमका भार उठानेकी प्रतिज्ञा करते हुए अन्तमें स्पष्ट कह दिया—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(९। ३४)

तू मुझ (श्रीकृष्ण)-में मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको नमस्कार कर। इस प्रकार अपनेको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

भगवान्ने अपनेसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़नेके लिये यह 'राजगुह्य-गुह्यतम' आदेश दे दिया। पर अर्जुन कुछ नहीं बोले। तदनन्तर चौदहवें अध्यायके अन्तमें भगवान्ने अपनेको 'ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा' बतलाकर अर्जुनका ध्यान खींचा। इसके पश्चात् पंद्रहवें अध्यायमें बहुत स्पष्ट शब्दोंमें अपनेको 'क्षर' (नाशवान् जडवर्ग क्षेत्र)-से सर्वथा अतीत और अविनाशी 'अक्षर'—जीवात्मासे या '**अक्षरं ब्रह्म परमम्**' (गीता ८। ३)-के अनुसार ब्रह्मसे उत्तम बतलाकर कहा—

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात् कृतकृत्यश्च भारत॥

(१५। १९-२०)

'भारत! जो मूर्ख नहीं है, वह ज्ञानी पुरुष मुझ (श्रीकृष्ण)-को ही 'पुरुषोत्तम' जानता है और वही सर्वज्ञ है। इसलिये वह सब प्रकारसे निरन्तर मुझ (श्रीकृष्ण)-को ही भजता है। निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह गुह्यतम शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसको तत्त्वसे जानकर पुरुष बुद्धिमान् और कृतकृत्य हो जाता है।'

यहाँ भगवान्का स्पष्ट संकेत है कि 'अर्जुन! तू मुझ पुरुषोत्तमके ही सब प्रकारसे शरण हो जा। इससे तू कृतकृत्य हो जायगा।' पर अर्जुन कुछ नहीं बोले। तदनन्तर १६ वें अध्यायसे १८ वें अध्यायके ५३ वें श्लोकमें विविध ज्ञानका वर्णन करके ५४ वें तथा ५५ वें श्लोकोंमें 'पराभक्ति' की बात कहकर भगवान्ने फिर अपनी ओर लक्ष्य कराया। पर जब अर्जुन फिर भी कुछ नहीं बोले तब जरा डाँटकर रूखे स्वरमें और अपनेको अलगसे हटाते हुए भगवान्ने कहा—

'यदि अहंकारके कारण तू मेरी बात नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायगा। तू जो अहंकारका आश्रय लेकर यह मान रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या है। तेरी प्रकृति ही तुझे युद्धमें लगा देगी। कौन्तेय! जिस कर्मको तू मोहके कारण नहीं करना चाहता, उसको अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मसे बँधा विवश होकर करेगा।'

इसके बाद भगवान्ने अपना सम्बन्ध बिलकुल हटाकर अन्तर्यामी ईश्वरकी ओर लक्ष्य कराते हुए अर्जुनसे कहा—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥

(गीता १८। ६१—६३)

'अर्जुन! शरीररूप यन्त्रपर आरूढ़ सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी

ईश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमाता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। तू सर्वभावसे उस ईश्वरकी ही शरणमें जा। उसकी कृपासे तू परमशान्ति और शाश्वत स्थानको प्राप्त होगा। इस प्रकार मैंने तो यह '**गुह्याद् गुह्यतर**'—गुह्योंसे भी गुह्य ज्ञान तुझसे कह दिया। अब इसपर भलीभाँति विचार करके तू जैसा जो चाहता है सो कर।'

भगवान्‌के इन शब्दोंसे स्पष्ट यह ध्वनि निकलती है—मानो वे अर्जुनसे कह रहे हैं कि 'अर्जुन! तूने कहा था कि मैं आपके शरण हूँ और मैंने यही समझकर तेरा सारा भार वहन करना भी चाहा, तुझे कई प्रकारसे समझाया—संकेत किया, स्पष्ट शब्दोंमें भी अपनी महत्ता बतलाकर तुझे अपनी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न किया, पर मैं नहीं कर पाया। मैंने अपनी महत्ताके अतिरिक्त तुझको और जो कुछ कहा है—बताया है, वह भी कम महत्त्वका नहीं है। वह भी गोपनीय-से-गोपनीय है। मालूम होता है तुझे तेरा अन्तर्यामी भ्रमा रहा है, अतएव अब तू मेरी नहीं, उस अन्तर्यामीकी ही शरणमें जा, वही तुझे शान्ति देगा। मैं तो जो कुछ कह सकता था, कह चुका, अब तेरी जैसी इच्छा हो, वही कर, मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है।'

अर्जुनने भी समझा कि भगवान् जो कुछ कह रहे हैं, ठीक है। इतना समझाने-सिखानेपर भी मैं अबतक नहीं समझा। इनकी महत्ता जानकर भी मैंने नहीं जाना। इसीसे तो हताश-से होकर मेरे परम आश्रय प्रियतम प्रभु आज मुझे दूसरेका आश्रय लेनेके लिये कह रहे हैं।' इसीलिये तो आज्ञा—आदेश न देकर मुझे इच्छानुसार करनेकी (**यथेच्छसि तथा कुरु**) बात कह रहे हैं। 'मैं कितना मूर्ख हूँ।' इस प्रकार समझकर अर्जुन अत्यन्त विषादग्रस्त हो गये और मन-ही-मन पश्चात्ताप करते हुए भगवान्‌की ओर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे देखने लगे। वाणी बंद हो गयी। शरीर अवश-सा होकर गिरने लगा। यह सब इसीसे सूचित होता है कि '**यथेच्छसि तथा कुरु**' कहनेके बाद अर्जुनके बिना कुछ कहे ही भगवान्‌का रुख बदल गया और वे अत्यन्त

स्नेहभरे शब्दोंमें अपनी ओरसे पुनः अपनी महान् महत्ताकी बात कहने लगे। मालूम होता है अर्जुनकी विषादयुक्त मुखाकृति देखकर भगवान्का स्नेह उमड़ आया। भगवान् तो यही परिस्थिति लाना चाहते थे, जिसमें अर्जुन सर्वतोभावसे शरणागत हो जाय, 'वह ऐसी स्थितिमें आ जाय, जिसमें वह भगवान्को ही एकमात्र साध्य-साधन सब कुछ मानकर अपनेको पूर्णरूपसे समर्पण कर दे। भगवान्ने अर्जुनके हावभावसे यह निश्चितरूपसे जान लिया कि अब 'शक्ति' ग्रहण करनेके लिये शिष्य पूर्णरूपसे प्रस्तुत है और इसीलिये तुरंत शक्तिपात करके उसे शक्तिमान् बना दिया। भगवान्ने कहा—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

'भैया! तू 'सर्वगुह्यतम' मेरे परम श्रेष्ठ वचनको फिर भी सुन। तू मेरा दृढ़ इष्ट है—अतिशय प्रिय है, अतएव तेरे ही हितके लिये यह कह रहा हूँ।' अभिप्राय यह कि भगवान् अर्जुनको उदास देखकर उन्हें गले लगाकर अब वह बात कहना चाहते हैं, जो 'सर्वगुह्यतम' है। गुप्त (गुह्य), गुप्तोंमें भी गुप्त (गुह्यतर), उसमें भी गुप्त (गुह्यतम) बात हुआ करती है, पर यह तो गुह्यतममें भी सबसे अधिक गुह्यतम—'सर्वगुह्यतम' है, तो अत्यन्त अन्तरंगता हुए बिना कही जा सकती ही नहीं। तू मेरा प्रिय ही नहीं, ऐसा प्रिय है कि उसमें कभी अन्तर पड़ नहीं सकता। इसीसे तेरे ही हितके लिये यह बात कह रहा हूँ—और यह ऐसी बात है कि जो सबसे श्रेष्ठ है, पहले भी इसे कह चुका हूँ, तूने ध्यान नहीं दिया। अब तू फिरसे सुन। इस प्रकार कहकर मानो भगवान्ने वे जो कुछ कहना चाहते हैं, उसकी भूमिका बाँधी है अथवा अब अगले दो श्लोकोंके रूपमें जो महान् दिव्य-रत्न प्रदान करना चाहते हैं, उन्हें सुरक्षित रखनेके लिये मंजूषाके नीचेका हिस्सा दिखाया है। इसमें वे रत्न रखकर, फिर उसके ऊपरका ढक्कन देंगे ६७ वें श्लोकके रूपमें। वे अमूल्य परम गोपनीयोंमें गोपनीय रत्न ये हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६५-६६)

'तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको ही प्रणाम कर। यों करनेसे तू मुझको ही प्राप्त होगा—यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। तू सब धर्मोंको छोड़कर केवल एक मुझ परमपुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोच मत कर।'

भगवान्‌ने इन शब्दोंके द्वारा अर्जुनसे कहा है कि 'अबतक जो बात कही, वह तो गुप्त-से-गुप्त होनेपर भी प्रायः सबको कही जा सकती थी। अब यह ऐसी बात है, जिसका सम्बन्ध तुझसे और मुझसे ही है। तू क्यों किसी बखेड़े-झगड़ेमें पड़ता है? मन लगानेयोग्य, भक्ति-सेवा करनेयोग्य, पूजा करनेयोग्य और नमस्कार करनेयोग्य समस्त चराचर विश्वमें और विश्वसे परे भी यदि कोई है तो वह एकमात्र मैं ही हूँ। लोग मुझे न जान-मानकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। मैं सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि जो यों मान लेता है, वह मुझ ब्रह्मके भी प्रतिष्ठास्वरूप मुझ भगवान्‌को पाता है। तू मेरा प्रिय है—अन्तरंग इष्ट है। इसीसे अपना निजका यह महत्त्वपूर्ण रहस्य तुझे बतलाया है। तू यही कर। अबतक जो कुछ धर्म मैंने बतलाये हैं, उन सबकी तुझे आवश्यकता नहीं, छोड़ उन सबको। सब धर्मोंका परम आश्रय तो मैं हूँ, तू एकमात्र मेरी शरणमें आ जा। धर्मोंके त्यागसे पापका भय हो तो तू डर मत, जरा भी चिन्ता न कर— तुझे सारे पापोंसे मैं छुड़ा दूँगा। असल बात तो यह है—जैसे सूर्यके सामने अन्धकार नहीं आ सकता, वैसे ही मेरी शरणमें आये हुएके समीप पाप-ताप आ ही नहीं सकते। तू निश्चिन्त हो जा।

अर्जुनने इसकी मूक स्वीकृति दी—मुखमण्डलपर विलक्षण आनन्दकी छटा लाकर। तब भगवान्ने कहा—देख भैया! यह अत्यन्त ही गोपनीय रहस्यकी बात है—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

(१८। ६७)

'यह सर्वगुह्यतम तत्त्व किसी भी कालमें जो तपरहित हो—जो सर्वत्यागरूपी कष्ट सहनेको न तैयार हो, जो मेरा भक्त न हो, जो सुनना न चाहता हो और जो मुझमें दोष देखता हो—उससे कभी कहना ही मत।'

इस श्लोकके द्वारा मानो भगवान्ने रत्नोंकी पेटीके ढक्कन लगा दिया। अतएव इस श्लोकमें जो 'सर्वधर्मत्याग' की आज्ञा है, वह ठीक इसी अर्थमें है। इस प्रकार सर्वधर्मत्याग करके शरणागत हो जानेवाला पुरुष सर्वथा निश्चिन्त हो जाता है, किसी भी ऊहापोहमें न पड़कर वह अपने शरण्यके कथनानुसार सहज आचरण करता है। सहजरूपमें ही शरण्यके अनुकूल आचरण करना उसका एकमात्र धर्म होता है। वह और किसी धर्मको जानता ही नहीं। सब धर्मोंको भुलाकर वह इस एक ही धर्मका अनन्य सेवन करता है। यह **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'** श्लोक ही भगवद्गीताका अन्तिम उपदेश है। अब अर्जुन इस तत्त्वको जान-मान गये हैं। उनका मुखमण्डल एक परम स्निग्ध उज्ज्वल दीप्तिसे चमचमा उठा है। तब भगवान् पुनः निश्चय करनेके लिये उनसे पूछते हैं, क्यों अर्जुन! मेरे इस सर्वगुह्यतम उपदेशको तूने पूरा मन लगाकर सुना? और इसे सुनकर तेरा मोह दूर हुआ?' अर्जुन उत्तरमें कहते हैं—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥

(१८। ७३)

'अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया, मैंने स्मृति प्राप्त कर ली। अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आप जो कहेंगे, वही करूँगा।'

इस श्लोकमें अर्जुनके द्वारा शरणागतिकी स्वीकृति है। अथवा यही शरणागतिका स्वरूप है। अर्जुन कहते हैं—मेरे मोहका नाश हो गया (**नष्टो मोहः**) मैं अहंकारवश कह रहा था कि युद्ध नहीं करूँगा। वह मोह था। अब मुझे स्मरण हो आया कि मैं तो आप यन्त्रीके हाथका यन्त्रमात्र हूँ (**स्मृतिर्लब्धा**)। पर यह मोहनाश और स्मृतिकी प्राप्ति भी मेरे पुरुषार्थसे नहीं हुई, यह आपकी शरणागत-वत्सलतारूप कृपासे हुई है (**त्वत्प्रसादात्**) और इस कृपाकी भी मैंने साधनसे उपलब्धि नहीं की, अच्युत! आप अपने विरदसे कभी च्युत नहीं होते, अतः स्वभावसे ही आपने कृपा की है। अब मैं यन्त्ररूपमें स्थित हो गया (**स्थितोऽस्मि**)। मेरे सारे संशय-भ्रम मिट गये (**गतसंदेहः**)। अब तो बस, आप जो कुछ कहेंगे, वही करूँगा (**करिष्ये वचनं तव**)।' यही 'शरणागति-धर्म' है।

और सचमुच अर्जुन इस शरणागतिके सिवा और सब धर्मोंके ज्ञानको भूल गये। इसका पता लगता है तब जब अश्वमेधपर्वमें अर्जुन भगवान्से उन धर्मोंको फिरसे सुनना चाहते हैं और कहते हैं कि 'मैं उनको भूल गया।' उस समय भगवान् उन्हें उलाहना देते हुए कहते हैं कि 'मैंने उस समय तुम्हें 'गुह्य' ज्ञान सुनाया था जो स्वरूपभूत शाश्वत-धर्म था।'

श्रावितस्त्वं मया 'गुह्यं' ज्ञापितश्च सनातनम्।
धर्मस्वरूपिणं पार्थ सर्वलोकांश्च शाश्वतान्॥

यहाँ 'गुह्य' शब्दसे यह ध्वनित होता है कि भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने श्रेष्ठ वचन (**परमं वचः**)-के रूपमें जो 'सर्वधर्मत्याग' करके अनन्य शरणागतिका 'सर्वगुह्यतम' उपदेश किया था, उसे अर्जुन नहीं भूले थे। वे तो उसी 'गुह्य' को भूल-से गये थे, जिसका त्याग करनेके लिये भगवान्ने कहा था। इसीसे यहाँ 'गुह्य' शब्द आया है।

अतएव यही निष्कर्ष निकलता है कि इस श्लोकमें सब धर्मोंको त्यागकर अनन्य शरणागतिका ही उपदेश है और यही गीताका मुख्य तात्पर्य है।

सेवापराध और नामापराध

सेवापराध

१-सवारीपर चढ़कर अथवा पैरोंमें खड़ाऊँ पहनकर श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें जाना।

२-रथ-यात्रा, जन्माष्टमी आदि उत्सवोंका न करना या उनके दर्शन न करना।

३-श्रीमूर्तिके दर्शन करके प्रणाम न करना।

४-अशौच-अवस्थामें दर्शन करना।

५-एक हाथसे प्रणाम करना।

६-परिक्रमा करते समय भगवान्‌के सामने आकर कुछ न घूमकर फिर परिक्रमा करना अथवा केवल सामने ही परिक्रमा करते रहना।

७-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने पैर पसारकर बैठना।

८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दोनों घुटनोंको ऊँचा करके उनको हाथोंसे लपेटकर बैठ जाना।

९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने सोना।

१०-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने भोजन करना।

११-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने झूठ बोलना।

१२-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने जोरसे बोलना।

१३-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने आपसमें बातचीत करना।

१४-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने चिल्लाना।

१५-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कलह करना।

१६-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको पीड़ा देना।

१७-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीपर अनुग्रह करना।

१८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको निष्ठुर वचन बोलना।

१९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कम्बलसे सारा शरीर ढक लेना।

२०-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी निन्दा करना।

२१-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी स्तुति करना।

२२-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अश्लील शब्द बोलना।

२३-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अधोवायुका त्याग करना।

२४-शक्ति रहते हुए भी गौण अर्थात् सामान्य उपचारोंसे भगवान्‌की सेवा-पूजा करना।

२५-श्रीभगवान्‌को निवेदन किये बिना किसी भी वस्तुका खाना-पीना।

२६-जिस ऋतुमें जो फल हो, उसे सबसे पहले श्रीभगवान्‌को चढ़ाना।

२७-किसी शाक या फल आदिके अगले भागको छोड़कर भगवान्‌के व्यंजनादिके लिये देना।

२८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहको पीठ देकर बैठना।

२९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरे किसीको भी प्रणाम करना।

३०-गुरुदेवकी अभ्यर्थना, कुशल-प्रश्न और उनका स्तवन न करना।

३१-अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना।

३२-किसी भी देवताकी निन्दा करना।

श्रीवाराहपुराणमें ३२ सेवापराधोंका वर्णन नीचे लिखे अनुसार किया गया है—

१-राजाके अन्नका भक्षण करना।

२-अँधेरेमें श्रीविग्रहका स्पर्श करना।

३-नियमोंको न मानकर श्रीविग्रहका स्पर्श करना।

४-बाजा या ताली बजाये बिना ही श्रीमन्दिरके द्वारको खोलना।

५-अभक्ष्य वस्तुएँ निवेदन करना।

६-पादुकासहित भगवान्‌के मन्दिरमें जाना।

७-कुत्तेकी जूठनका स्पर्श करना।

८-पूजा करते समय बोलना।

९-पूजा करते समय मलत्यागके लिये जाना।

१०-श्राद्धादि किये बिना नया अन्न खाना।

११-गन्ध और पुष्प चढ़ानेके पहले धूप देना।

१२-निषिद्ध पुष्पोंसे भगवान्‌की पूजा करना।

१३-दतुवन किये बिना भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा या उनका स्पर्श करना।

१४-स्त्री-सहवास करके भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा या उनका स्पर्श करना।

१५-रजस्वला स्त्रीका स्पर्श करके श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

१६-दीपका स्पर्श करके श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

१७-मुर्देका स्पर्श करके श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

१८-लाल वस्त्र पहनकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

१९-नीला वस्त्र पहनकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२०-बिना धोया हुआ वस्त्र पहनकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२१-दूसरेका वस्त्र पहनकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२२-मैला वस्त्र पहनकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२३-शवको देखकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२४-अधोवायुका त्याग करके श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२५-क्रोध करके श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२६-श्मशानमें जाकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२७-खाया हुआ अन्न पचनेसे पहले खाकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२८-पशुओंका मांस खाकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

२९-पक्षियोंका मांस खाकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

३०-गाँजा आदि मादक द्रव्योंका सेवन करके श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

३१-कुसुंब-साग खाकर श्रीभगवान्‌की पूजा या उनका स्पर्श करना।

३२-शरीरमें तेल मलकर भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा या उनका स्पर्श करना।

गंगास्नान करनेसे, यमुनास्नान करनेसे, भगवान्‌की सेवा करनेसे, प्रतिदिन गीताका पाठ करनेसे, तुलसीके द्वारा श्रीशालग्रामजीकी पूजा करनेसे, द्वादशीके दिन जागरण करके तुलसीका स्तवन करनेसे, भगवान्‌की पूजा करनेसे और भगवान्‌के नामका आश्रय लेकर नाम-कीर्तन करनेसे सेवापराध छूट जाता है। भगवान्‌के नामसे सारे अपराधोंकी क्षमा हो जाती है। श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

मम नामानि लोकेऽस्मिञ्श्रद्धया यस्तु कीर्तयेत्।
तस्यापराधकोटींस्तु क्षमाम्येव न संशयः॥

'इस संसारमें जो पुरुष श्रद्धापूर्वक मेरे नामोंका कीर्तन करता है, मैं उसके करोड़ों अपराधोंको क्षमा कर देता हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

नामापराध

१-सत्पुरुषोंकी निन्दा करना।

२-शिव और विष्णुके नामोंमें ऊँच-नीचकी कल्पना करना।

३-गुरुका अपमान करना।

४-वेदादि शास्त्रोंकी निन्दा करना।

५-'भगवान्‌के नामकी जो इतनी महिमा कही गयी है, यह केवल स्तुतिमात्र है, असलमें इतनी महिमा नहीं है।' इस प्रकार भगवान्‌के नाममें अर्थवादकी कल्पना करना।

६-'भगवान्‌के नामसे पापोंका नाश होता ही है, पाप करके नाम लेनेसे पाप नष्ट हो ही जायँगे, पाप हमारा क्या कर सकते हैं?' इस प्रकार भगवान्‌के नामका आश्रय लेकर नामके बलपर पाप करना।

७-यज्ञ, तप, दान, व्रत आदि शुभ कर्मोंको नामके समान मानना।

८-श्रद्धारहित और सुनना न चाहनेवाले व्यक्तिको उपदेश करना।

९-नामकी महिमा सुनकर भी नाममें प्रीति न करना और—

१०-'मैं' और 'मेरे' के फेरमें पड़कर विषय-भोगोंमें आसक्त होना। इन दस नामापराधोंसे भी छुटकारा नामके जप-कीर्तनसे ही मिलता है।

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च॥

'नामापराधयुक्त पुरुषोंका पाप नाम ही हरण करता है और निरन्तर कीर्तन किये जानेपर वह सारे मनोरथोंको पूरा करता है।'

महत्त्वपूर्ण उपासना—सर्वभूतहित

उपासनाका महत्त्वपूर्ण स्वरूप है—'एक भगवान् ही समस्त विश्व-चराचरके रूपमें अभिव्यक्त हैं'—यह समझकर किसीका अपमान, अनिष्ट न करके—किसीको दुःख न पहुँचाकर, किसीका अहित न कर सदा-सर्वदा अपनी सारी योग्यता, सारी शक्ति, सारी सम्पत्ति, सारी बुद्धि और सारा जीवन लगाकर मन-वाणी-शरीरसे सबका सम्मान करना, सबका दुःख निवारण करना, सबको सुख पहुँचाना और सबका हित करना। श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलदेव कहते हैं—मैं सबका आत्मा सबमें स्थित हूँ, जो मेरी उपेक्षा करके केवल मेरा पूजन करता है वह तो भस्ममें ही हवन करता है। जो दूसरे जीवोंसे वैर बाँधता है, वह तो उनके शरीरोंमें स्थित मुझ आत्मासे ही द्वेष करता है, उसके मनको कभी शान्ति नहीं मिल सकती—'**भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥**' (३। २९। २३)

दया—धर्मका स्वरूप

परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा।
आपन्ने रक्षितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता॥

(अत्रिस्मृति ४१)

दूसरोंमें हो, बन्धु-बान्धवोंमें, मित्रोंमें या द्वेष रखनेवालोंमें अथवा—चाहे वैरियोंमें हो— किसीको भी विपत्तिग्रस्त देखकर उसकी रक्षा करना 'दया' कहलाता है।

न हि प्राणैः प्रियतमं लोके किंचन विद्यते।
तस्मात् प्राणिदया कार्या यथाऽऽत्मनि तथा परे॥

(महाभारत, अनुशासन० १४५)

संसारमें प्राणोंके समान प्रियतम दूसरी कोई वस्तु नहीं है। अतः समस्त प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। जैसे अपने ऊपर दया अभीष्ट होती है, वैसे ही दूसरोंपर भी होनी चाहिये।

अमित्रमपि चेद् दीनं शरणैषिणमागतम्।
व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः॥
कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः॥

(महाभारत, अनुशासन० ५९। १०-११)

शत्रु भी यदि दीन होकर शरण पानेकी इच्छासे घरपर आ जाय तो संकटके समय जो उसपर दया करता है वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

विद्वान् होनेपर भी जिसकी महान् आजीविका क्षीण हो गयी है तथा जो दीन, दुर्बल और दुःखी है, ऐसे मनुष्यकी जो भूख मिटा देता है, उस पुरुषके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है।

दया देखती नहीं जाति-कुल, मनुज-पक्षि-पशु-मित्र-अमित्र।
देश-धर्म, निज-पर, बान्धव-अरि, उच्च-नीच, धनवान-दरिद्र॥
बुध-जड, बाल-वृद्ध, नारी-नर, भेद-भाव-विरहित सर्वत्र।

अपना दुःख बना देती पर-दुःख, जगाती भाव पवित्र॥
लग जाता फिर मानव उस निज-दुःख मिटानेमें तत्काल।
करता पूर्ण प्रयत्न, शक्तिभर, स्वाभाविक, न बजाता गाल॥
रहता निरभिमान वह, प्रभुकी इसे मानता कृपा विशाल।
अपना दुःख मिटाकर, अपने ही हो जाता परम निहाल॥

विश्वास-धर्म—भगवान्‌का प्रत्येक विधान मंगलमय

भगवान् सब प्राणियोंके सहज सुहृद् हैं, सर्वज्ञानस्वरूप हैं और सर्वशक्तिमान् हैं; अतएव उनके दयापूर्ण नियन्त्रणमें, जीवोंके लिये फलरूपमें जो कुछ विधान किया जाता है, सब उनके कल्याणके लिये होता है; क्योंकि भगवान् सुहृद् हैं। वे अहित कर नहीं सकते, सब उचित होता है; क्योंकि ज्ञानस्वरूप भगवान् जानते हैं कि कौन-से कार्यसे इसका वास्तविक कल्याण होगा। और सब पूरा होता है; क्योंकि सर्वशक्तिमान् भगवान् सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, अतएव विश्वासी भक्त प्रत्येक परिस्थितिमें, प्रत्येक परिणाममें मंगलमय भगवान्‌का कल्याण-विधान समझकर प्रसन्न रहता है, उनकी अपार अहैतुकी कृपाका, उनके अनन्त सौहार्दका अनुभव करता और परम प्रसन्न रहता है, उसे प्रत्यक्ष मंगल दिखायी देता है। वह अनुकूल फलमें ही नहीं, प्रतिकूल-से-प्रतिकूलमें भी भगवान्‌की कृपा देखकर निर्विकार रहता और एकान्त आनन्दका अनुभव करता है। प्रत्येक अपमान, तिरस्कार, निन्दा, धननाश, प्रिय-से-प्रिय वस्तुके विनाश तथा अभाव, रोग, मृत्यु—सभीमें समानरूपसे प्रसन्न रहता है। किसी भी स्थितिमें उसका विश्वास जरा भी नहीं हिलता।

भक्त नरसीजीके एकमात्र पुत्र था। बड़ा प्रिय था। भगवान्‌के मंगल-विधानसे उसकी मृत्यु हो गयी। नरसीजीको दिखायी दिया—मेरे मनमें पुत्रमोह था। मैं इस मोहमें भगवान्‌को कभी-कभी भूल जाता था। यह एक बाधा थी भजनमें। भगवान्‌ने कृपा करके इस बाधाको दूर करके मेरा बड़ा मंगल किया। उन्होंने भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए गाया—

भलुँ थयुँ रें भाँगी जंजाल। सुखे थी भजशुं श्रीगोपाल॥

बहुत अच्छा हुआ, जंजाल टूट गया! अब सुखसे निर्बाध श्रीगोपालका भजन करूँगा।

परहित-धर्म

परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

तामसी प्रकृतिका महान् बलशाली रावण जगज्जननी सीताका अपहरण करके लिये जा रहा था। वयोवृद्ध पक्षिराज जटायुने सीताका करुण विलाप सुना और वे दुर्वृत्त रावणके हाथसे उन्हें छुड़ानेके लिये उससे भिड़ गये। पक्षिराजने रावणको रणमें बहुत छकाया और जबतक उनके जीवनकी आहुति न लग गयी, तबतक लड़ते रहे। अन्तमें रावणने जटायुके दोनों पंख काटकर उन्हें मरणासन्न बनाकर गिरा दिया और वह सीताजीको ले गया। कुछ समय बाद भगवान् श्रीराम लक्ष्मणके साथ सीताजीको खोजते हुए वहाँ पहुँचे। जटायुको अपने लिये प्राण न्योछावर किये देखकर भगवान् श्रीराम गद्गद हो गये और स्नेहाश्रु बहाते हुए उन्होंने जटायुके मस्तकपर अपना हाथ रखकर उसकी सारी पीड़ा हर ली। फिर गोदमें उठाकर अपनी जटाओंसे उसकी धूल झाड़ने लगे—

दीन मलीन अधीन ह्वै अंग बिहंग पर्‍यो छिति छिन्न दुखारी।
राघव दीन दयालु कृपालु कों देखि दुखी करुना भइ भारी॥
गीध कों गोद में राखि कृपानिधि नैन-सरोजन में भरि बारी।
बारहिं बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटान सों झारी॥

गृध्रराज कृतार्थ हो गये। वे गृध्र-देह त्यागकर तथा चतुर्भुज नीलसुन्दर दिव्य रूप प्राप्त करके भगवान्का स्तवन करने लगे—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥

स्तवन करनेके पश्चात् अविरल भक्तिका वर प्राप्त करके जटायु वैकुण्ठधामको पधार गये—

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥

रामनाम और गाँधीजी
[पुराने संस्मरण]

(क)

पुरानी बात है—बंबईमें श्रीबालूरामजी 'रामनामके आढ़तिया' आये हुए थे। वे लोगोंको नाम-जप करनेका नियम दिलवाते और अपनी बहीमें उनकी सही करवा लेते थे। लाखों सही करवायी होगी उन्होंने। बहियोंके ढेर थे उनके पास। उनकी बहीमें सभी सम्प्रदायों और मतोंके हस्ताक्षर मिलेंगे। यहाँतक कि मुसलमान, ईसाई, पारसी आदिसे भी वे उनके अपने मत और विश्वासके अनुसार प्रतिदिन प्रभु-नाम लेने या प्रभु-प्रार्थना करनेकी प्रतिज्ञा करवाया करते थे। यही उनकी आढ़त थी। उन दिनों पूज्यपाद महामना मालवीयजी महाराज और पूज्य महात्माजी—दोनों ही बंबई पधारे हुए थे। आढ़तियाजीने सेठ जमनालालजीसे तो सही करवा ही ली थी, उन्होंने कहा—'महात्माजी और श्रीमालवीयजीके पास भी मुझे ले चलो। श्रीजमनालालजीने मुझको बुलवाया और हम तीनों लेबरनम रोडपर महात्माजीके पास गये। सेठजीने आढ़तियाजीका परिचय कराया। बापू बहुत ही प्रसन्न हुए और हँस-हँसकर आढ़तियाजीकी बही देखने और उनकी तारीफ करने लगे। आढ़तियाजीने बही खोलकर सामने रख दी और सही करनेका अनुरोध किया। इसपर महात्माजीने मुसकराकर कहा—'जब मैं अफ्रीकामें था, तब तो रामनामकी माला बहुत जपा करता था, परंतु अब तो दिन-रात जो कुछ करता हूँ, सब राम-नामके लिये ही करता हूँ, इसलिये मैं खास समय और संख्याके लिये हस्ताक्षर क्यों करूँ?' आढ़तियाजीको बापूकी बात सुनकर संतोष हुआ। फिर हमलोग राजाबहादुर श्रीगोविन्दलालजी पित्तीके बँगलेपर, जहाँ पूज्य मालवीयजी ठहरे हुए थे, गये। मालवीयजी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आढ़तियाजीकी बहीमें लिख दिया—'मैंने जबसे होश सँभाला, भगवान्‌का नित्यप्रति स्मरण करता हूँ और जबतक जीऊँगा, करता रहूँगा।'

(ख)

'कल्याण' का 'भगवन्नामांक' निकलनेवाला था। सेठ जमनालालजीको साथ लेकर मैं बापूके पास गया रामनामपर कुछ लिखवानेके लिये। बापूने हँसकर कहा—'जमनालालजीको क्यों साथ लाये। क्या मैं इनकी सिफारिश मानकर लिख दूँगा? तुम अकेले ही क्यों नहीं आये?' सेठजी मुसकराये। मैंने कहा—'बापूजी! बात तो सच है, मैं इनको इसीलिये साथ लाया कि आप लिख ही दें।' बापू हँसकर बोले, 'अच्छा, इस बार माफ करता हूँ, आइंदा ऐसा अविश्वास मत करना।' फिर कलम उठायी और तुरंत नीचे लिखा संदेश लिख दिया—

'नामकी महिमाके बारेमें तुलसीदासने कुछ भी कहनेको बाकी नहीं रखा है। द्वादशाक्षर मन्त्र और अष्टाक्षर मन्त्र—ये सब इस मोहजालमें फँसे हुए मनुष्यके लिये शान्तिप्रद हैं। इसमें कुछ भी शंका नहीं है। जिससे जिसको शान्ति मिले उस मन्त्रपर वह निर्भर रहे। परंतु जिनको शान्तिका अनुभव ही नहीं है और जो शान्तिकी खोजमें है उसको तो अवश्य राम-नाम पारसमणि बन सकता है। ईश्वरके सहस्त्र नाम कहे हैं, उसका अर्थ यह है कि उसके नाम अनन्त हैं, गुण अनन्त हैं। इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परंतु देहधारीके लिये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मूढ़ और निरक्षर भी रामनाम-रूपी एकाक्षर मन्त्रका सहारा ले सकता है। वस्तुत: राम उच्चारणमें एकाक्षर ही है और ॐकार तथा राममें कोई फरक नहीं है। परंतु नाम-महिमा बुद्धिवादसे सिद्ध नहीं हो सकता है। श्रद्धासे अनुभव-साध्य है।'

संदेश लिखकर मुसकराते हुए बापू बोले—'तुम मुझसे ही संदेश लेने आये हो जगत्‌को उपदेश देनेके लिये या खुद भी कुछ करते हो? रोज नामजपका नियम लो तो तुम्हें संदेश मिलेगा, नहीं तो मैं नहीं दूँगा।' मैंने कहा—'बापूजी! मैं कुछ जप तो रोज करता ही हूँ, अब कुछ और बढ़ा दूँगा।' बापूने यह कहकर कि—'भाई, बिना कीमत ऐसी कीमती चीज थोड़े ही दी जाती है'—मुझे संदेश दे दिया।

सेठजीको कुछ बातें करनी थीं। वे ठहर गये। मैंने चरणस्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके मैं लौट आया।

(ग)

मैं बंबईसे राजपूताना जा रहा था। अहमदाबादमें बापूके दर्शनार्थ रुक गया। वेटिंग रूममें सामान रखकर साबरमती आश्रम पहुँचा। दोपहरका समय था। बापू बैठे कुछ लिख रहे थे। मैंने जाकर चरणोंमें प्रणाम किया। बापूने सिरपर हाथ रखकर पास बैठा लिया। मेरे हाथमें 'कल्याण' का अंक था। वे उसे लेकर देखने लगे। 'कल्याण' के द्वारा प्रतिवर्ष कुछ समयके लिये षोडशाक्षर मन्त्रके जापके लिये ग्राहकोंसे अनुरोध किया जाता है और जपका समय पूरा हो जानेपर जप किये जानेवाले स्थानोंके नाम तथा जपकी संख्या 'कल्याण' में छापी जाती है। उस अंकमें वह संख्या छपी थी। संख्या मुझे याद तो नहीं है, परंतु दस करोड़से कुछ ज्यादा ही थी। बापूने उसीको पढ़ा और सब बातें सुनीं। सुनकर बहुत ही संतुष्ट हुए, कहा—'तुम यह बहुत अच्छा करा रहे हो। इतने जप करनेवालोंमें कुछ भी यदि हृदयसे जप करनेवाले निकलेंगे तो उनका तथा देशका बड़ा कल्याण होगा।' फिर हँसकर बोले—'मैं भी जप करता हूँ, परंतु मैं तो तुम्हें सूचना नहीं भेजूँगा। देखो, यह मेरी माला।' इतना कहकर तकियेके नीचेसे माला निकालकर दिखायी और बोले—'मैं रात-बिरात चुपके-चुपके जपा करता हूँ।' माला पुरानी हो गयी थी, कुछ मनिये टूट गये थे। वृन्दावनसे आयी हुई तुलसीकी दो मालाएँ मेरी जेबमें थीं। मैंने प्रार्थना की—'बापूजी! माला टूट गयी है, मेरे पास वृन्दावनसे आयी हुई दो माला हैं। आप इनमेंसे एक ले लें।' बापूने कहा—'तो तुम मुझे माला देने आये हो?' मैंने कहा—'नहीं, मैं तो दर्शन करने आया था। यह तो प्रसंगवश बात हो गयी।' बापूने कृपा करके माला ले ली। मैं कुछ देर बैठा। बापूने और भी कई बातें कहीं। मुझे ठीक याद नहीं आ रही हैं। मुझे उसी शामको जाना था, इसलिये मैं कुछ देरके बाद वहाँसे स्टेशन चला आया।

रामनामका मूल्य

एक नगरके बाहर एक महात्मा रहा करते थे। एक श्रद्धालु भक्त प्रतिदिन उनके पास जाता, दर्शन करता और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी खूब सेवा करता। उसकी सेवासे महात्माजी प्रसन्न हो गये और बोले—'तू ईश्वर-भक्त है, तू साधु-संत-सेवी है, शास्त्रके वचनोंपर विश्वास करता है, साधननिष्ठ है, तेरी सरलता और सेवा सराहनीय है। तू व्यर्थके कुतर्कमें नहीं फँसता, किसीका तू अहित नहीं करता। ये ही सब ऐसे आदर्श गुण हैं, जो भक्तमें सहज ही होने चाहिये। तुझको इन सद्‌गुणोंसे सम्पन्न और हर प्रकारसे योग्य समझकर एक परम गोपनीय मन्त्र दे रहा हूँ। इस मन्त्रके वास्तविक महत्त्वको कोई नहीं जानता। इसे किसीको बतलाना—देना मत।' यह कहकर महात्माजीने 'राम' उस भक्तके कानमें कह दिया। वह भक्त 'राम'-नामके जपमें प्रवृत्त हो गया।

अब तो 'राम' का जप उस श्रद्धालु भक्तका स्वभाव बन गया। न किसीकी ओर देखना, न ध्यान देना, न कुछ कहना— बस, निरन्तर 'राम' का जप करते रहना। भक्त रोज गंगा-स्नान करने जाता-आता; पर 'राम' के जपके अतिरिक्त दूसरेसे उसका कोई प्रयोजन न था। एक दिन वह गंगा नहाकर लौट रहा था कि उसका ध्यान उन कुछ लोगोंकी ओर गया, जो गंगास्नान करके लौटते समय जोर-जोरसे 'राम-राम' बोल रहे थे। उनके द्वारा 'राम' शब्द सुनते ही भक्तको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि 'महात्माजी तो यह कहते थे कि यह परम गुप्त मन्त्र है, पर इसे तो जन-जन बोल रहा है। फिर इसमें गोपनीयता कहाँ रही? मुझसे तो कहा कि किसीसे बतलाना नहीं और यहाँ तो हर एकके मुखपर 'राम' है।' अब वह भक्त घर न जाकर सीधा महात्माजीकी कुटियापर पहुँचा और अपने मनका सारा संदेह महात्माजीके सामने निवेदन करके बैठ गया। महात्माजी उसकी मनोदशासे अवगत हो गये। उन्होंने कहा—'अच्छी

बात है, मैं तुम्हारे संदेहको मिटा दूँगा, तुम चिन्ता मत करो। पहले मेरा एक बहुत जरूरी काम कर दो।'

यह कहकर महात्माजीने अपनी झोलीसे एक चमकता काँच-सा निकालकर उस भक्तको दिया और कहा—'वत्स! इसको लेकर तुम बाजारोंमें जाओ और इसका मूल्य अँकवा लाओ। देखो, इसको किसी भी मूल्यपर बेचना नहीं है। केवल यही पता लगाना है कि इसका मूल्य क्या है?'

सरल-चित्त और श्रद्धालु भक्तने महात्माजीकी बात मान ली। अपने संदेहको एक बार वहीं छोड़ दिया और महात्माजीके आज्ञानुसार उस काँचका मूल्य अँकवानेके लिये वह बाजारमें गया। बाजारमें प्रवेश करते ही उसे एक साग बेचनेवाली मिली। भक्तने उस सागवालीको दिखाकर उसका मूल्य पूछा। सागवालीने विचार किया कि 'यह काँच बड़ा ही चमक रहा है, बच्चोंके खेलनेके लिये बढ़िया चीज है।' यों सोचकर उसने भक्तसे कहा—'यह मुझे दे दो और बदलेमें दो किलो आलू ले जाओ।' भक्तने वह काँच वापस ले लिया और आगे बढ़ा। सामने सुनारकी दूकान आयी। सुनारको दिखाकर भक्तने काँचका मूल्य पूछा। सुनारने देखकर सोचा कि 'यह देखनेमें नकली हीरा-सा लगता है, अतः इसका मूल्य सौ रुपया देकर भी ले लेनेमें कोई हानि नहीं होगी।' सुनारने उस काँचका दाम सौ रुपये बता दिया। सुनारसे काँच लेकर भक्त आगे बढ़ा। एक महाजनकी दूकानपर गया और उसे काँचको दिखाया। महाजनने देखा और सोचा—'है तो यह नकली हीरा, पर इतना बढ़िया है कि इसे कौन नकली कहेगा। फिर हमारे घरकी बहू-बेटियोंको पहने देखकर तो सभी इसको असली कहेंगे।' यों विचारकर महाजनने एक हजार रुपये मूल्यरूप देनेको कहा। भक्त और आगे बढ़ा। अब भक्तके मनमें उत्साह आ गया। दामकी जाँच ज्यों-ज्यों कराता जा रहा था, त्यों-ही-त्यों काँचकी श्रेष्ठता और उच्चता प्रकट और सिद्ध होती जा रही थी।

फिर भक्त एक जौहरीकी दूकानपर गया। जौहरीने देखा और

मन-ही-मन कहा—'यह लगता तो हीरा है, पर इतना बड़ा और बढ़िया हीरा तो कभी देखा नहीं। शायद हीरा न हो; पर यदि कहीं हीरा हुआ तो इसका मूल्य अत्यधिक होगा। अतएव एक लाख रुपयेतकमें इसे खरीद लेना बुरा न होगा। यह सोचकर पूरे एक लाख रुपयेमें हीरा लेना चाहा। भक्तने हीरा वापस ले लिया। भक्तका विश्वास बढ़ गया। तदनन्तर वह नगरके सबसे बड़े जौहरीके यहाँ गया और उसे हीरा दिखाया। जौहरीने देखा, बारीकीसे परखा और कहा—'भाई! इतना बढ़िया हीरा तुम्हें कहाँसे मिल गया? यह तो अमूल्य है। इतना भव्य और बड़ा हीरा मैंने आजतक कहीं देखा ही नहीं। यह इतना मूल्यवान् है कि जौहरियोंके तथा बड़े-बड़े नरेशोंतकके सारे हीरोंका जितना दाम हो सकता है, वह सब मिलाकर भी इसके मूल्यके बराबर नहीं हो सकता। वास्तवमें इसका मोल आँकना किसीकी भी बुद्धिसे बाहरकी बात है।' यह उस काँच (और अब हीरे)-के मूल्यांकनकी पराकाष्ठा थी।

भक्त लौटकर महात्माजीके पास आ गया। महात्माजीने भक्तसे काँचका मूल्य पूछा। भक्तने कहा—'महाराज! यह तो अमूल्य हीरा है। सागवालीने दो किलो आलू बताया। सुनारने बदलेमें सौ रुपये देने चाहे। महाजनने एक हजार आँके। जौहरीने एक लाख कहा और नगरके सबसे बड़े जौहरीने यही कहा कि यह अमूल्य है। देशके सारे हीरे मिलकर भी मूल्यमें इसकी बराबरी नहीं कर सकते।' महात्माजीने वह हीरा वापस लेकर झोलीमें रख लिया।

भक्तने कहा—'महाराज! मैं तो आपके आज्ञानुसार आपका काम कर आया, अब आप मेरे संदेहको दूर कीजिये।' महात्माजीने हँसते हुए कहा—'कर तो चुका भैया!' बात भक्तकी समझमें आयी नहीं। उसने विनम्रतासहित पूछा—'कैसे गुरुदेव!' महात्माजी बड़े प्यारसे बोले—'अभी तुमको प्रत्यक्ष उदाहरण दिया न?' तुम हीरा लेकर बाजारमें गये। किसीने दो किलो आलू, किसीने सौ रुपये, किसीने एक हजार अथवा एक लाख रुपये मूल्यांकन किया। पर सच्चे जौहरीने

इसे अमूल्य बताया। चीज एक ही थी, पर सबका मूल्यांकन अलग-अलग था। इसी तरह 'राम' नाम भी अमूल्य वस्तु है। इसका सच्चा मूल्य आँका नहीं जा सकता—और तो क्या, स्वयं राम भी इसका मूल्य नहीं बता सकते—*'राम न सकहिं नाम गुन गाई।'* इस रहस्यको वही जानता है, जिसपर भगवान्‌की कृपा होती है। राम-नाम लेनेवाले बहुत लोग हैं, पर कीमत जाननेवाले बिरले ही होते हैं।' भक्तका सारा संदेह दूर हो गया। अत्यधिक श्रद्धाभावसे उसने महात्माजीके चरणोंमें प्रणाम किया और वह अधिक नाम-निष्ठाके साथ घरको लौट गया।

अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामकी महिमाका वर्णन

(१)

भगवान् धन्वन्तरिजीके वचन हैं—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्‌ ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्‌ ॥

'अच्युत, अनन्त, गोविन्द— इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ।'

(२)

श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीके अनुनयपर उन्हें भगवान्‌के मत्स्यकूर्मादि अवतारोंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनाया। इसी प्रसंगमें उन्होंने पार्वतीको समुद्रमन्थनकी कथा सुनाते हुए भगवान् विष्णुकी नाम-महिमाका प्रकाशन इस प्रकार किया—शुक्ल एकादशी तिथिको समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ। उस समय लक्ष्मीके प्रादुर्भावकी अभिलाषा रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मुनिवरोंने भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान और पूजन किया। उस मुहूर्तमें सबसे पहले कालकूट नामक महाभयंकर विष प्रकट हुआ, जो बहुत बड़े पिण्डके रूपमें था। वह प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था। उसे देखते ही सम्पूर्ण देवता और दानव भयसे पीड़ित हो भागने लगे। यह देख मैंने उन सबको रोककर कहा— 'देवताओ! इस विषसे भय न करो। इस कालकूट नामक महान् विषको मैं अभी अपना आहार बना लूँगा।' मेरी बात सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता मेरे चरणोंमें पड़ गये और साधु-साधु कहकर मेरी स्तुति करने लगे। उधर मेघके समान काले रंगवाले उस महाभयानक विषको प्रकट हुआ देख, मैंने एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें सर्वदुःखहारी भगवान् नारायणका ध्यान किया और उनके तीन नामरूपी महामन्त्रका भक्तिपूर्वक जप करते हुए उस भयंकर विषको पी लिया।

सर्वव्यापी श्रीविष्णुके तीन नामोंके प्रभावसे उस लोकसंहारक विषको मैंने अनायास ही पचा लिया। उन्होंने आगे कहा—

अच्युतानन्तगोविन्द इति नामत्रयं हरेः।
यो जपेत् प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्॥
तस्य मृत्युभयं नास्ति विषरोगाग्निजं महत्।
नामत्रयमहामन्त्रं जपेद् यः प्रयतात्मवान्॥
कालमृत्युभयं चापि तस्य नास्ति किमन्यतः।

(पद्मपुराण, उत्तर० २३२। १९—२१ कलकत्ता और संस्करण)

'अच्युत, अनन्त और गोविन्द'—ये हरिके तीन नाम हैं। जो एकाग्रचित्त हो इनके आदिमें '**प्रणव**' और अन्तमें '**नमः**' '**ॐ अच्युताय नमः**', '**ॐ अनन्ताय नमः**', '**ॐ गोविन्दाय नमः**' इस रूपमें भक्तिपूर्वक जप करता है, उसे विष, रोग और अग्निसे होनेवाली मृत्युका भय नहीं प्राप्त होता। जो इस तीन नामरूपी महामन्त्रका एकाग्रतापूर्वक जप करता है, उसे काल और मृत्युसे भी भय नहीं होता, फिर दूसरोंसे भय होनेकी बात ही क्या है।'

भगवन्नाम सर्वोपरि तीर्थ

भक्त प्रह्लाद कहते हैं—

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्।
नित्यं यज्ञायुतं पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम्॥

(स्कन्द०, द्वारकामा० ३८। ४५)

कलियुगमें जो प्रतिदिन 'कृष्ण', 'कृष्ण', 'कृष्ण' उच्चारण करेगा, उसे नित्य दस हजार यज्ञ तथा करोड़ों तीर्थोंका फल प्राप्त होगा।

यावन्ति भुवि तीर्थानि जम्बूद्वीपे तु सर्वदा।
तानि तीर्थानि तत्रैव विष्णोर्नामसहस्रकम्॥
तत्रैव गंगा यमुना च वेणी गोदावरी तत्र सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्र स्थितं नामसहस्रकं तत्॥

(पद्म०, उत्तर० ७२। ९-१०)

जहाँ विष्णुभगवान्‌के सहस्रनामका पाठ होता है, वहीं पृथ्वीपर जम्बूद्वीपके जितने तीर्थ हैं, वे सब सदा निवास करते हैं। जहाँ भगवान्‌का सहस्रनाम विराजित है, वहीं गंगा, यमुना, कृष्णवेणी, गोदावरी, सरस्वती और समस्त तीर्थ निवास करते हैं।

तत्र पुत्र गया काशी पुष्करं कुरुजाङ्गलम्।
प्रत्यहं मन्दिरे यस्य कृष्ण कृष्णेति कीर्तनम्॥

(स्कन्द०, वै० मार्ग० मा० १५। ५०)

भगवान् (ब्रह्माजीसे) कहते हैं—वत्स! जिसके घरमें प्रतिदिन 'कृष्ण', 'कृष्ण' का कीर्तन होता है, वहीं गया, काशी, पुष्कर तथा कुरुजांगल (तीर्थ) रहते हैं।

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम्।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

जो पुरुष एक बार 'नारायण' नामका उच्चारण कर लेता है, वह निश्चित ही तीन सौ कल्पोंतक गंगादि समस्त तीर्थोंमें स्नान कर चुकता है।

सर्वेषामेव यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च।
तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च॥
वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम्।
कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०)

समस्त यज्ञ, लाखों व्रत, सम्पूर्ण तीर्थोंका स्नान, सब प्रकारके तप, अनशनादि व्रत, सहस्रों वेदपाठ, पृथ्वीकी सौ परिक्रमाएँ—ये सब श्रीकृष्ण-नाम-जपकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं।

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्।
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः॥

(पद्मपुराण, उत्तर० ७१। २०-२१)

'राम', 'राम', 'राम', 'राम'—इस प्रकार बार-बार जप करनेवाला चाण्डाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। उसने केवल नामका उच्चारण करते ही कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि सम्पूर्ण तीर्थोंका सेवन कर लिया।

किं वै तीर्थे ते तात पृथिव्यामटने कृते।
यस्य वै नाममहिमा श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥
तन्मुखं तु महत्तीर्थं तन्मुखं क्षेत्रमेव च।
यन्मुखे राम रामेति तन्मुखं सार्वकामिकम्॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१। ३३-३४)

देवर्षि नारदजी कहते हैं— जिनके नामका ऐसा माहात्म्य है कि उसके सुननेमात्रसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है, उनका आश्रय छोड़कर तीर्थसेवनके

लिये पृथ्वीपर भटकनेकी क्या आवश्यकता है। जिस मुखमें 'राम'-'राम' का जप होता रहता है, वह मुख ही महान् तीर्थ है, वही प्रधान क्षेत्र है तथा वही समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

तन्मुखं परमं तीर्थं यत्रावर्तं वितन्वती।
नमो नारायणायेति भाति प्राची सरस्वती॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ७१। १७)

जहाँ '**नमो नारायणाय**' रूपसे आवर्तका विस्तार करती हुई (इन शब्दोंको दुहराती हुई) प्राचीसरस्वती (वाणीरूप नदी) बहती है, वह मुख ही परम तीर्थ है।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(श्रीमद्भागवत ३। ३३। ७)

देवहूतिजी कहती हैं—अहो! वह चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ है, जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर आपका नाम विराज रहा है। जो आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थ-स्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया।

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य किं काश्या विरजेन वा।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

(नारदमहापुराण, उत्तर० ७। ४)

ब्रह्माजी कहते हैं—जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर विराजमान हैं, उसे कुरुक्षेत्र, काशी और विरज-तीर्थके सेवनकी क्या आवश्यकता है।

इस प्रकार तीर्थोंकी तुलनामें भगवन्नामका माहात्म्य सर्वत्र गाया गया है। ऊपर उसमेंसे कुछ ही श्लोक उद्धृत किये गये हैं। नामकी महिमा अतुलनीय है। विशेषतया कलियुगके प्राणियोंके लिये तो भगवन्नाम ही एकमात्र परम साध्य और परम साधन है। जिसने नामका आश्रय ले लिया,

उसका जीवन निश्चय ही सफल हो चुका। यहाँ नीचे कुछ नाम-महिमाके महान् वाक्योंका अनुवाद दिया जाता है। उनसे यदि पाठकोंका ध्यान नाम-जप-कीर्तनकी ओर आकर्षित हुआ और वे भगवन्नाम-जप-कीर्तनमें लग गये तो उनका और जगत्‌का महान् कल्याण होगा। भगवान्‌के पवित्र नामोंके जप-कीर्तनमें वर्णाश्रमका कोई नियम नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, स्त्री—सभी भगवन्नामके अधिकारी हैं, सभी भगवान्‌का नामकीर्तन करके पापोंसे मुक्त हो सनातन पदको प्राप्त कर सकते हैं—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्॥

न भगवन्नाममें देशकालका नियम है, न शुद्धि-अशुद्धिका और न अपवित्र-पवित्र अवस्थाका नियम है। चाहे जहाँ, चाहे जब, चाहे जैसी स्थितिमें—चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते—सभी समय भगवान्‌के नामका कीर्तन करके मनुष्य बाहर-भीतरसे पवित्र हो परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् विष्णुके पार्षद यमदूतोंसे कहते हैं—

बड़े-बड़े महात्मा पुरुष यह जानते हैं कि संकेतमें, (किसी दूसरे अभिप्रायसे) परिहासमें, तान अलापनेमें अथवा किसीकी अवहेलना करनेमें भी यदि कोई भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अंग-भंग होते समय और साँपके द्वारा डँसे जाते समय, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतासे (अभ्यासवश, बिना किसी प्रयत्नके) 'हरि-हरि' कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता।*

यमदूतो! जान या अनजानमें भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन करनेसे

---

* सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। १४-१५)

मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जैसे कोई परमशक्तिशाली अमृतको उसका गुण न जानकर अनजानमें पी ले, तो भी वह अवश्य ही पीनेवालेको अमर बना देता है, वैसे ही अनजानमें उच्चारित करनेपर भी भगवान्‌का नाम अपना फल देकर ही रहता है। (वस्तुशक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती।)

भगवान् शंकर देवी पार्वतीसे कहते हैं—

'राम'—यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपे जानेपर समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, बैठते, सोते (जब कभी भी) जो मनुष्य राम-नामका कीर्तन करता है, वह यहाँ कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् हरिका पार्षद बनता है।[१]

'राम' यह मन्त्रराज है, यह भय एवं व्याधिका विनाशक है। उच्चारित होनेपर यह द्व्यक्षर मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है। गुणोंकी खान इस राम-नामका देवतागण भी भलीभाँति गान करते हैं। अतएव हे देवेश्वरि! तुम भी सदा राम-नाम कहा करो। जो राम-नामका जप करता है, वह सारे पापोंसे (मोहजनित समस्त सूक्ष्म और स्थूल पापोंसे) छूट जाता है।

मुनि आरण्यक भगवान् श्रीरामभद्रसे कहते हैं—

श्रीराघवेन्द्र! ब्रह्महत्याके समान पाप भी तभीतक गर्जते हैं, जबतक आपके नामोंका स्पष्टरूपसे उच्चारण नहीं किया जाता। आपके नामोंकी गर्जना सुनकर महापातकरूपी मतवाले हाथी कहीं छिपनेके लिये जगह ढूँढ़ते हुए भाग खड़े होते हैं। महान् पाप करनेके कारण कातर हृदयवाले मनुष्योंको तभीतक पापका भय रहता है, जबतक वे अपनी जीभसे परम मनोहर राम-नामका उच्चारण नहीं करते।[२]

१- रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः।
गच्छंस्तिष्ठन् शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्।
(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड)

२- तावत् पापभयः पुंसां कातराणां सुपापिनाम्।
यावन्न वदते वाचा रामनाम मनोहरम्॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्माजीसे कहते हैं—

जो कृष्ण! कृष्ण!! कृष्ण!!! यों कहकर मेरा प्रतिदिन स्मरण करता है, उसे—जिस प्रकार कमल जलको भेदकर ऊपर निकल आता है, उसी प्रकार—मैं नरकसे उबार लेता हूँ।[१] जो विनोदसे, पाखण्डसे, मूर्खतासे, लोभसे अथवा छलसे भी मेरा भजन करता है, वह मेरा भक्त कभी कष्टमें नहीं पड़ता। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जो कृष्णनामकी रट लगाते हैं, वे यदि पापी हों तो भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करते। पूर्व-अवस्थामें किसीने सम्पूर्ण पाप किये हों, तथापि यदि वह अन्तकालमें श्रीकृष्ण-नामका स्मरण कर लेता है तो निश्चय ही मुझे प्राप्त होता है। मृत्यु-काल उपस्थित होनेपर यदि कोई 'परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है' इस प्रकार विवश होकर भी कहे तो वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। जो श्रीकृष्णका उच्चारण करके प्राण-त्याग करता है, उसे प्रेतराज यम दूरसे ही खड़े होकर भगवद्धाममें जाते देखते हैं। यदि 'कृष्ण-कृष्ण' रटता हुआ कोई श्मशानमें अथवा रास्तेमें भी मर जाता है तो वह भी मुझे ही प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है। जो मेरे भक्तोंका दर्शन करके कहीं मृत्युको प्राप्त होता है, वह मनुष्य मेरा स्मरण किये बिना भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है।[२] बेटा! पापरूपी प्रज्वलित अग्निसे भय न करो, श्रीकृष्णके नामरूपी मेघोंके जलकी बूँदोंसे उसे सींचकर बुझा दिया जा सकता है। तीखी दाढ़ोंवाले कलिकालरूपी सर्पका क्या भय है? श्रीकृष्णके नामरूपी ईंधनसे उत्पन्न आगके द्वारा वह जलकर नष्ट हो

१- कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्॥
(स्कन्द, वैष्णव० मार्ग० १५। ३६)

२- दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित्।
विना मत्स्मरणात् पुत्र मुक्तिमेति स मानवः॥
(१५।४३)

जाता है।[१] पापरूपी अग्निसे दग्ध होकर जो सत्कर्मकी चेष्टासे शून्य हो गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्णके नाम-स्मरणके सिवा दूसरा कोई औषध नहीं है। संसार-समुदमें डूबकर जो महान् पापोंकी लहरोंमें गिर गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्ण-स्मरणके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। जो पापी हैं, किंतु जो मरना नहीं चाहते, ऐसे मनुष्योंके लिये मृत्युकालमें श्रीकृष्ण-चिन्तनके सिवा परलोक-यात्राके उपयुक्त दूसरा कोई पाथेय (राहखर्च) नहीं है। उसीका जन्म और जीवन सफल है तथा उसीका मुख सार्थक है, जिसकी जिह्वा सदा कृष्ण-कृष्णकी रट लगाये रहती है। समस्त पापोंको भस्म कर डालनेके लिये मुझ भगवान्‌के नाममें जितनी शक्ति है, उतना पातक कोई पातकी मनुष्य कर ही नहीं सकता।[२] कृष्ण-कृष्णके कीर्तनसे मनुष्यके शरीर और मन कभी श्रान्त नहीं होते, उसे पाप नहीं लगता और विकलता भी नहीं होती। जो श्रीकृष्ण-नामोच्चारण-रूपी पथ्यका कलियुगमें त्याग नहीं करता, उसके चित्तमें पापरूपी रोग नहीं पैदा होते। श्रीकृष्ण-नामका कीर्तन करते हुए मनुष्यकी आवाज सुनकर दक्षिण दिशाके अधिपति यमराज उसके सौ जन्मोंके पापोंका परिमार्जन कर देते हैं। सैकड़ों चान्द्रायण और सहस्रों पराक-व्रतसे जो पाप नष्ट नहीं होता, वह 'कृष्ण-कृष्ण' ध्वनिसे चला जाता है। कोटि-कोटि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें स्नान करनेसे जो फल बतलाया गया है,

---

१- पापानलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक।
श्रीकृष्णनाममेघोत्थैः सिच्यते नीरबिन्दुभिः॥
कलिकालभुजंगस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम्।
श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति॥

(१५।४४-४५)

२- जीवितं जन्म सफलं मुखं तस्यैव सार्थकम्।
सततं रसना यस्य कृष्ण कृष्णेति जल्पति॥
नाम्नोऽस्य यावतीशक्तिः पापनिर्दहने मम।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

(१५।५२—५३)

उसे मनुष्य 'कृष्ण-कृष्णके कीर्तनमात्रसे पा लेता है।' जो जिह्वा कलिकालमें श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह दुष्टा मुँहमें न रहे, रसातलको चली जाय। जो कलियुगमें श्रीकृष्णके गुणोंका प्रयत्नपूर्वक कीर्तन करती है, वह जिह्वा अपने मुखमें हो या दूसरेके मुखमें, वन्दना करनेयोग्य है। जो दिन-रात श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं—मुखमें कोई पापमयी लता है, जिसे जिह्वाके नामसे पुकारा जाता है। जो 'श्रीकृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्णनामका कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जिह्वा सौ टुकड़े होकर गिर जाय।*

योगेश्वर सनकजी श्रीनारदजीसे कहते हैं—

सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्‌का पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करके पा लेता है।

जो मानव निष्काम अथवा सकामभावसे '**नमो नारायणाय**' का कीर्तन करते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं देता।

जो लोग प्रतिदिन 'हरे! केशव! गोविन्द! जगन्मय! वासुदेव!' इस प्रकार कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता अथवा जो शिव, शंकर, रुद्र, ईश, नीलकण्ठ, त्रिलोचन इत्यादि महादेवजीके नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें भी कलियुग बाधा नहीं देता। नारदजी! 'महादेव! विरूपाक्ष! गंगाधर! मृड! और अव्यय।' इस प्रकार जो शिव-नामोंका

* मुखे भवतु मा जिह्वासती यातु रसातलम्।
न सा चेत् कलिकाले या श्रीकृष्णगुणवादिनी॥
स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वन्द्या जिह्वा प्रयत्नतः।
कुरुते या कलौ पुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्॥
पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते।
या न वक्ति दिवारात्रौ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्॥
पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी।
श्रीकृष्ण कृष्ण कृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति॥

(१५। ६३—६६)

कीर्तन करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं अथवा जो 'जनार्दन! जगन्नाथ! पीताम्बरधर! अच्युत!' इत्यादि विष्णु-नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें इस संसारमें कलियुगसे भय नहीं है।

'भगवन्नाममें अनुरक्त चित्तवाले पुरुषोंका अहोभाग्य है, अहोभाग्य है! वे देवताओंके लिये भी पूज्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अधिक बातें कहनेसे क्या लाभ! अतः मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितकी बात कहता हूँ कि भगवन्नामपरायण मनुष्योंको कलियुग कभी बाधा नहीं दे सकता! भगवान् विष्णुका नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है! कलियुगमें दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।'[१]

श्रीश्रुतदेव कहते हैं—

हँसीमें, भयसे, क्रोधसे, द्वेषसे, कामसे अथवा स्नेहसे, पापी-से-पापी मनुष्य भी यदि एक बार श्रीहरिका पापहारी नाम उच्चारण कर लेते हैं तो वे भी भगवान् विष्णुके निरामय धाममें जा पहुँचते हैं।[२]

भक्त प्रह्लाद कहते हैं—

जो मनुष्य नित्य 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' का जप करता है, कलियुगमें श्रीकृष्णपर उसका निरन्तर प्रेम बढ़ता है।

जो मनुष्य जागते-सोते समय प्रतिदिन 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' कीर्तन करता है, वह श्रीकृष्णस्वरूप हो जाता है।

कलियुगमें श्रीकृष्णका कीर्तन करनेसे मनुष्य अपनी बीती हुई

१- अहो भाग्यमहो भाग्यं हरिनामरतात्मनाम्।
त्रिदशैरपि ते पूज्याः किमन्यैर्बहुभाषितैः॥
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(नारदमहापुराण, पूर्व० ४१। ११३, ११५)

२-हास्याद् भयात्तथा क्रोधाद् द्वेषात् कामादथापि वा।
स्नेहाद् वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च॥
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम्।
(स्कन्द०, वैष्णवखण्ड, वैशाखमाहात्म्य २१। ३६-३७)

सात पीढ़ियों और आनेवाली चौदह पीढ़ियोंके सब लोगोंका उद्धार कर देता है।*

यमराज अपने दूतोंको आदेश देते हैं—'जहाँ भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिवके नामोंका उच्चारण होता है, वहाँ मत जाया करो।' इसपर उन्होंने हरि-हरकी १०८ नामोंकी नामावलि कही है—'जो धर्मराजरचित सारे पापोंका बीज-नाश करनेवाली सुललित हरि-हर-नामावलिका नित्य जप करेगा, उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।

नामावलि नीचे दी जाती है—

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति॥

गंगाधरान्तकरिपो हर नीलकण्ठ
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे।
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश॥ त्याज्या०॥

विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे
गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड।
नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे॥ त्याज्या०॥

मृत्युंजयोऽग्र विषमेक्षण कामशत्रो
श्रीकान्त पीतवसनाम्बुदनील शौरे।
ईशान कृत्तिवसन त्रिदशैकनाथ॥ त्याज्या०॥

लक्ष्मीपते मधुरिपो पुरुषोत्तमाद्य
श्रीकण्ठ दिग्वसन शान्त पिनाकपाणे।

---

* अतीतान् सप्तपुरुषान् भविष्यांश्च चतुर्दश।
नरस्तारयते सर्वान् कलौ कृष्णेति कीर्तनात्॥
(स्कन्द०, प्रभासखण्ड, द्वारकामाहात्म्य)

आनन्दकन्द धरणीधर पद्मनाभ॥ त्याज्या० ॥
सर्वेश्वर त्रिपुरसूदन देवदेव
ब्रह्मण्यदेव गरुडध्वज शंखपाणे।
त्र्यक्षोरगाभरण बालमृगांकमौले॥ त्याज्या० ॥
श्रीराम राघव रमेश्वर रावणारे
भूतेश मन्मथरिपो प्रमथाधिनाथ।
चाणूरमर्दन हृषीकपते मुरारे॥ त्याज्या० ॥
शूलिन् गिरीश रजनीशकलावतंस
कंसप्रणाशन सनातन केशिनाश।
भर्ग त्रिनेत्र भव भूतपते पुरारे॥ त्याज्या० ॥
गोपीपते यदुपते वसुदेवसूनो
कर्पूरगौर वृषभध्वज भालनेत्र।
गोवर्धनोद्धरण धर्मधुरीण गोप॥ त्याज्या० ॥
स्थाणो त्रिलोचन पिनाकधर स्मरारे
कृष्णानिरुद्ध कमलाकर कल्मषारे।
विश्वेश्वर त्रिपथगार्द्रजटाकलाप॥ त्याज्या० ॥
अष्टोत्तराधिकशतेन सुचारुनाम्नां
संदर्भितां ललितरत्नकदम्बकेन।
सन्नामकां दृढगुणां द्विजकण्ठगां यः
कुर्यादिमां स्त्रजमहो स यमं न पश्येत्।

अगस्तिरुवाच

यो धर्मराजरचितां ललितप्रबन्धां
नामावलीं सकलकल्मषबीजहन्त्रीम्।
धीरोऽत्र कौस्तुभभृतः शशिभूषणस्य
नित्यं जपेत् स्तनरसं स पिबेन्न मातुः॥

(स्कन्द०, काशी० पूर्वार्द्ध० अध्याय ८)

तीर्थोंकी महिमा, तीर्थ-सेवन-विधि, तीर्थ-सेवनका फल और विभिन्न तीर्थ

तीर्थोंकी अनन्त महिमा है, वे अपनी स्वाभाविक शक्तिसे ही सबका पाप नाश करके उन्हें मनोवांछित फल प्रदान करते हैं और मोक्षतक दे देते हैं। हिंदूशास्त्रोंमें तीर्थोंके नाम, रूप, लक्षण और महत्त्वका बड़ा विशद वर्णन है। महाभारत, रामायण आदिके साथ ही प्राय: सभी पुराणोंमें तीर्थोंकी महिमा गायी गयी है। पद्मपुराण और स्कन्दपुराण तो तीर्थ-महिमासे परिपूर्ण हैं। तीर्थोंमें किनको, कब, कैसे, क्या-क्या लाभ हुए तथा किस तीर्थका कैसे प्रादुर्भाव हुआ—इसका बड़े सुन्दर ढंगसे अति विशद वर्णन उनमें किया गया है। भारतवर्षमें ऐसे करोड़ों तीर्थ हैं। इसी भाँति अन्यान्य देशोंमें भी बहुत तीर्थ हैं। तीर्थोंकी इतनी महिमा इसीलिये है कि वहाँ महान् पवित्रात्मा भगवत्प्राप्त महापुरुषों और संतोंने निवास किया है या श्रीभगवान्‌ने किसी भी रूपमें कभी प्रकट होकर, उन्हें अपना लीलाक्षेत्र बनाकर महान् मंगलमय कर दिया है।

संत-महात्मा तीर्थरूप हैं

भगवान्‌के स्वरूपका साक्षात्कार किये हुए भगवत्प्रेमी महात्मा स्वयं 'तीर्थरूप' होते हैं, उनके हृदयमें भगवान् सदा प्रकट रहते हैं, इसलिये वे जिस स्थानमें जाते हैं, वही तीर्थ बन जाता है। वे तीर्थोंको 'महातीर्थ' बना देते हैं। धर्मराज युधिष्ठिरने महात्मा श्रीविदुरजीसे यही कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूता: स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्त:स्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भागवत १। १३। १०)

भगवती श्रीगंगाजीने भगीरथसे कहा—'तुम मुझे पृथ्वीपर ले जाना

चाहते हो? अच्छा, मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। देखो, मुझमें स्नान करनेवाले लोग तो अपने पापोंको मुझमें बहा देंगे, पर मैं उनके पापोंको कहाँ धोने जाऊँगी?' भगीरथजीने कहा—

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥

(श्रीमद्भागवत ९। ९। ६)

'इस लोक और परलोककी समस्त भोग-वासनाओंका सर्वथा परित्याग किये हुए शान्तचित्त ब्रह्मनिष्ठ साधुजन, जो स्वभावसे ही लोगोंको पवित्र करते रहते हैं, अपने अंग-संगसे आपके पापोंको हर लेंगे; क्योंकि उनके हृदयमें समस्त पापोंको समूल हर लेनेवाले श्रीहरि नित्य निवास करते हैं।'

तीन प्रकारके तीर्थ

इसीसे तीर्थ तीन प्रकारके माने गये हैं—१-जंगम, २-मानस और ३-स्थावर। १-स्वधर्मपर आरूढ़ आदर्श ब्राह्मण और संत-महात्मा 'जंगम-तीर्थ' हैं। इनकी सेवासे सारी कामनाएँ सफल होती हैं और भगवत्तत्त्वका साक्षात्कार होता है।

२-'मानस-तीर्थ' हैं— सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, प्राणिमात्रपर दया, ऋजुता, दान, मनोनिग्रह, संतोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, विवेक, धृति और तपस्या। इन सारे तीर्थोंसे भी मनकी परम विशुद्धि ही सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। इन तीर्थोंमें भलीभाँति स्नान करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है—

येषु सम्यङ् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्।

तीर्थयात्राका उद्देश्य ही है—अन्तःकरणकी शुद्धि और उसके फलस्वरूप मानव-जीवनका चरम और परम ध्येय—भगवत्प्राप्ति। इसीलिये शास्त्रोंने अन्तःकरणकी शुद्धि करनेवाले साधनोंपर विशेष जोर दिया है। यहाँतक कहा है कि 'जो लोग इन्द्रियोंको वशमें नहीं रखते, जो लोभ, काम,

क्रोध, दम्भ, निर्दयता और विषयासक्तिको लेकर उन्हींकी गुलामी करनेके लिये तीर्थस्नान करते हैं, उनको तीर्थस्नानका फल नहीं मिलता।'

३-'स्थावर-तीर्थ' हैं—पृथ्वीके असंख्य पवित्र स्थान और सागर, नद-नदियाँ, सरोवर, कूप और जलाशय आदि। इनमें तीर्थराज प्रयाग, पुष्कर, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, द्वारका, उज्जैन, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, जगदीशपुरी, काशी, कांची, बदरिकाश्रम, श्रीशैल, सिन्धु-सागर-संगम, सेतुबन्ध, गंगा-सागर-संगम तथा गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, गोमती, नर्मदा, सरयू, कावेरी, मन्दाकिनी और कृष्णा आदि नदियाँ प्रधान हैं।

तीर्थयात्रा क्यों करनी चाहिये?

मनुष्य-जीवनका उद्देश्य है—भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति। जगत्में भगवान्को छोड़कर सब कुछ नश्वर है, दुःखदायी है। इनसे मन हटकर श्रीभगवान्में लग जाय—मनुष्यको बस, यही करना है। यह होता है भगवत्प्रेमी महात्माओंके संगसे और ऐसे महात्मा रहा करते हैं पवित्र तीर्थोंमें। इसीलिये शास्त्रोंने तीर्थयात्राको इतना महत्त्व दिया है और तीर्थोंमें जाकर सत्संग करने तथा संतजनोंके द्वारा सेवित पवित्र स्थानोंके दर्शन, पवित्र जलाशयोंमें स्नान और पवित्र वातावरणमें विचरण करनेकी आज्ञा दी है—

तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः।

'इसीलिये संसारसे डरे हुए लोगोंको तीर्थोंमें जाना चाहिये।' परंतु तीर्थसेवनका परम फल उन्हींको मिलता है, जो विधिपूर्वक वहाँ जाते हैं और तीर्थोंके नियमोंका सावधानी तथा श्रद्धाके साथ सुखपूर्वक पालन करते हैं। जो लोग 'तीर्थकाक' होते हैं—तीर्थोंमें जाकर भी कौवेकी तरह इधर-उधर गंदे विषयोंपर ही मन चलाते तथा उन्हींकी खोजमें भटकते रहते हैं, वे तो पूरा पाप कमाते हैं और इससे उन्हें दुस्तर नरकोंकी प्राप्ति होती है। यह याद रखना चाहिये कि 'तीर्थोंमें किये हुए पाप वज्रलेप हो

जाते हैं।' वे सहजमें नहीं मिटते। पवित्र होकर दीर्घकालतक तीर्थ-सेवनसे या भगवान्‌के निष्काम भजनसे ही उनका नाश होता है।

तीर्थयात्राकी विधि

तीर्थयात्राकी विधि यह है कि सबसे पहले तीर्थमें श्रद्धा करे, तीर्थोंके माहात्म्यमें विश्वास करे, उसको अर्थवाद न समझकर सर्वथा सत्य समझे, घरमें ही पहले मन-इन्द्रियोंके संयमका अभ्यास करे और उपवास करे। श्रीगणेशजीकी, देवता, ब्राह्मण और साधुओंकी पूजा करे, पितृ-श्राद्ध करे और पारण करे। इसके बाद भगवान्‌के नामका उच्चारण करते हुए यात्रा आरम्भ करे। कुछ दूर जाकर तीर्थादिमें स्नान करके क्षौर-कर्म कराये। तदनन्तर लोभ, द्वेष और दम्भादिका त्याग करके मनसे भगवान्‌का चिन्तन और मुँहसे भगवान्‌का नाम-कीर्तन करते हुए तीर्थके नियमोंको धारण करके यात्रा करे।

तीर्थयात्राके लिये पैदल जानेकी ही प्राचीन विधि है। उस कालमें तीर्थप्रेमी नर-नारी वापस लौटने, न लौटनेकी चिन्ता छोड़कर परम श्रद्धाके साथ संघ बनाकर तीर्थयात्राके लिये निकलते थे। उन दिनों न तो रेल या मोटर आदि सवारियाँ थीं और न दूसरी सुविधाएँ थीं। तीर्थयात्रीसंघ घाम-वर्षा सहता हुआ बड़े कष्टसे यात्रा करता था। परंतु श्रद्धा इतनी होती थी कि वह उस कष्टको उत्साहके रूपमें परिणत कर देती थी। आजकलकी तीर्थयात्रा तो सैर-सपाटेकी चीज हो गयी है। जो लोग छुट्टियाँ मनाने और भाँति-भाँतिसे मौज-शौक या प्रमोद करनेके लिये तीर्थोंमें जाते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कुछ कहना नहीं है। जो श्रद्धापूर्वक तीर्थसेवनके लिये जाते हैं, उनके लिये भी आजकल बड़ी आसानी हो गयी है। ऐसी अवस्थामें कुछ नियम अवश्य बना लेने चाहिये, जिससे जीवन संयममें रहे, प्रमाद न हो और तीर्थयात्रा सफल हो।

तीर्थ-सेवनके नियम

तीर्थमें कैसे रहना चाहिये और तीर्थका परम फल किसे प्राप्त होता है, इस सम्बन्धमें शास्त्रके वचन हैं—

'जिसके हाथ, पैर, मन भलीभाँति संयमित हैं, जो विद्या, तप तथा कीर्तिसे सम्पन्न है, जो प्रतिग्रहका त्यागी, यथालाभ-संतुष्ट तथा अहंकारसे छूटा हुआ है, जो दम्भरहित, आरम्भरहित, लघु-आहारी, जितेन्द्रिय तथा सर्वसंगोंसे मुक्त है, जो क्रोधरहित, निर्मलमति, सत्यवादी तथा दृढ़व्रती है और समस्त प्राणियोंको अपने आत्माके समान देखता है, वह तीर्थका फल प्राप्त करता है।' इनका विस्तारसे विचार करें—

१-हाथोंका संयम—हाथोंसे किसीको पीड़ा न पहुँचाये, किसीकी वस्तु न चुराये, किसी भी स्त्रीका, स्त्री किसी पुरुषका अंग-स्पर्श न करे, किसी भी गंदी चीजको न छूए और सदा भगवान्की, संतोंकी, गुरुजनोंकी, दीन-दु:खियोंकी तथा अपने साथी यात्रियोंकी यथायोग्य सेवा करता रहे।

२-पैरोंका संयम—पैरोंसे हड़बड़ाकर न चले, देख-देखकर पैर रखे, जिससे कहीं काँटा-कंकड़ न गड़ जाय, कोई जीव पैरके नीचे न दब जाय, पैरोंसे बुरे स्थानोंमें न जाय, असाधुओंके पास न जाय, नाच-तमाशे आदिमें न जाय, बूचड़खाने, शराबखाने, द्यूतगृह, वेश्याके घर, विषयी पुरुषोंके यहाँ और नास्तिकोंकी संगतिमें न जाय।

साधुसंग, तीर्थस्नान, देवदर्शन और सेवाके लिये सदा उत्साहसे जाय और इसमें कभी थकावटका अनुभव न करे।

३-मनका संयम—मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन न हो। मनमें काम, लोभ, ईर्ष्या, डाह, द्वेष, वैर, घमंड, कपट, अभिमान, कठोरता, क्रूरता, विषाद, शोक और व्यर्थ-चिन्तन आदि दोष न आने पायें, दूसरोंके दोषोंका चिन्तन-मनन न हो, स्त्रियोंके अंगों, चरितों और उनकी चेष्टाओंका जरा भी चिन्तन न हो। इसी प्रकार स्त्रियोंके द्वारा पुरुषोंका चिन्तन न हो, असम्भव विषयोंका तथा व्यर्थका चिन्तन न हो। मनके द्वारा भोगोंके दोषों तथा दु:खोंका, अपनी भूलोंका और अपराधोंका, दूसरोंके सच्चे गुणों एवं महत्त्वका तथा महापुरुषोंके चरित्र, गुण और स्वरूपका चिन्तन होता रहे। मन सदा-सर्वदा परम श्रद्धा तथा अनन्य प्रेमके साथ श्रीभगवान्के स्वरूपका उनके दिव्य नाम, गुण एवं लीला-चरित्रोंका,

उनके प्रभाव, महत्त्व, तत्त्व और गुरुत्वका चिन्तन करे। भगवान्‌की मोहिनी मूर्तिके निरन्तर दर्शन करता रहे और उन्हें देख-देखकर सदा शान्त, प्रसन्न, प्रफुल्ल और आनन्द-मुग्ध बना रहे।

४-विद्या—श्रीभगवान्‌को जाननेके लिये मन्त्रजाप, उपासना, साधन-चतुष्टय, विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति, मुमुक्षुत्व या गीतोक्त बीस ज्ञानसाधनोंका (१३।७—११) आश्रय लेना। भगवान्‌का रहस्य खोलनेवाली विद्या ही यथार्थ विद्या है—'**अध्यात्मविद्या विद्यानाम्**' (गीता १०।३२)।

५-तपस्या—प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले उठना, शौचस्नानादिसे निवृत्त होकर नियमित संध्योपासन-हवन-बलिवैश्वदेव आदि करना, गुरुजनोंको नित्य प्रणाम करना, खान-पानमें संयम-नियम रखना, अपने वर्णाश्रमके धर्मका पालन करना, सादगीसे रहना, सहनशील होना, व्रत-उपवासादि करना, शरीर, वाणी और मनसे प्रमाद न करना, मौन रहना, स्वाध्याय करना, हित-मित-मधुर भाषण करना, किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना, न कराना, सरल व्यवहार करना, मन-वाणी-शरीरसे पवित्र रहना, निर्दोष सेवा करना, कष्टसाध्य आचारोंके और स्वधर्मके पालनमें सदा तत्पर रहना।

६-कीर्ति—भगवान् तथा महात्माओंके यश गाना और सुनना, श्रीभगवान्‌के कैंकर्यसे यशस्वी होना, भगवान्‌की दासतारूपी कीर्तिसे सम्पन्न होना।

७-प्रतिग्रहका त्याग—किसीसे दान न लेना, किसीकी भेंट या उपहार स्वीकार न करना, जहाँतक बने, शरीर-निर्वाहके सभी कार्योंमें स्वावलम्बी रहना, खाने-पीने, जाने-आने तथा सोने-बैठनेके लिये सभी साधनोंकी व्यवस्था यथासाध्य अपने ही बलबूतेपर तथा अपने ही खर्चसे करना। दूसरोंके स्थानमें या धर्मशाला आदिमें ठहरना पड़े तो उसके निमित्त कुछ दे देना, मकान या जमीनके मालिक न लें तो किसी गरीबको दे देना तथा किसीसे भी शारीरिक और आर्थिक सेवा न कराना।

८-यथालाभसंतोष—भगवान्‌की प्रेरणा और विधानसे जैसा कुछ स्थान, खान-पानके पदार्थ, सुविधा-असुविधा मिल जाय, उसीमें संतुष्ट

रहना। तीर्थमें मनमाना आराम और भोग खोजनेकी प्रवृत्ति होनेसे मनुष्य तीर्थयात्राके उद्देश्यको भूल जाता है और उसका तन-मन विषय-सेवनमें ही लग जाता है। मनचाहा आराम न मिलनेपर वह विषादग्रस्त होकर लौट आता है तथा लोगोंमें तीर्थ-निन्दा करके तीर्थोंमें अश्रद्धा उत्पन्न कराकर पाप-तापका भागी होता है।

९-अहंकारका अभाव—वर्ण, जाति, धन, बल, विद्या, रूप, पद, अधिकार, प्रतिष्ठा, साधना, सद्गुण, शील आदि किसी भी निमित्तसे अहंकार नहीं करना चाहिये। यह भी नहीं सोचना चाहिये कि मेरे पुरुषार्थसे ही सब कुछ हो रहा है। अहंकार होनेपर तीर्थके महत्त्व, तीर्थवासी साधु-महात्मा तथा संतोंके आदर्श साधन और उनके सद्गुणोंसे लाभ नहीं उठाया जा सकता। अहंकार उनके संगसे विमुख कर देता है। कहीं प्रसंगवश संग हो भी जाता है तो अहंकारके कारण मनुष्य उससे कोई शुभ भाव ग्रहण नहीं कर सकता। उनमें उपेक्षा और दोष-बुद्धि करके छूँछा ही लौट आता है। इसके अतिरिक्त जहाँतक सम्भव हो, पांचभौतिक शरीरमें भी अहंकार नहीं करना चाहिये।

१०-दम्भका अभाव—अपनेमें सद्गुण या सामर्थ्य होनेपर भी लोगोंसे मान-प्रतिष्ठा, पूजा-सत्कार, धन-जमीन, भोग-ऐश्वर्य आदि प्राप्त करनेके लिये उन्हें अपनेमें दिखाना दम्भ है। दम्भी लोग दूसरोंको ठगने जाकर वास्तवमें स्वयं ही ठगाते हैं। उन्हें तीर्थसेवनका यथार्थ फल नहीं प्राप्त होता।

११-आरम्भशून्यता—तीर्थमें जाकर परमार्थ-साधनके सिवा किसी भी प्रापंचिक कार्यका आरम्भ नहीं करना चाहिये। प्रपंचमें पड़ते ही तीर्थसेवनका उद्देश्य चित्तसे चला जाता है। तीर्थोंमें जो प्रपंचका आरम्भ अथवा अहंकार एवं कामना-आसक्तिको लेकर आरम्भ किया जाता है, उसीसे लड़ाई-झगड़े, कलह, अशान्ति आदि बढ़कर तीर्थसेवनका उलटा फल होता है।

१२-लघु-आहार—शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये

आहारमें संयम तो सदा ही करना चाहिये। फिर यात्रामें तो जगह-जगहका जल पीना पड़ता है, सोने-उठनेमें भी कुछ अनियमितता होती है, तरह-तरहके नर-नारियोंसे भेंट होती है, खान-पानकी नयी-नयी वस्तुएँ मिलती हैं, वहाँ यदि संयम न रहे और ठूँस-ठूँसकर जहाँ-तहाँ जो कुछ भी खाया जाय तो शरीर और मन दोनों ही अस्वस्थ हो जायँगे। ऐसा होनेपर तीर्थयात्राका उद्देश्य तो नष्ट होगा ही, रोगकी पीड़ासे स्वयं दुःखी होना पड़ेगा और इस कारण साथियोंको भी तीर्थसेवनमें विघ्न हो जायगा। अतएव अपनी प्रकृतिके अनुकूल शुद्ध सात्त्विक आहार बहुत थोड़ी मात्रामें करना चाहिये। बीच-बीचमें उपवास भी करना चाहिये, अधिक मसाले, अचार, बाजारकी बनी मिठाइयाँ, अखाद्य वस्तुएँ, नशीली चीजें, सोडा, लेमन, जूठी चीजें आदि, अपवित्र जल, प्याज-लहसुन तथा अन्यान्य अशुद्ध वस्तुओंका सेवन कदापि नहीं करना चाहिये।

१३-जितेन्द्रियता—इन्द्रियाँ दस हैं। आँख, कान, नासिका, रसना और त्वचा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा देखना, सुनना, सूँघना, चखना और स्पर्श करना—ये पाँच कार्य होते हैं। हाथ, पैर, जीभ, गुदा और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा लेना-देना, आना-जाना, बोलना, मलत्याग और मूत्र-वीर्यका त्याग—ये पाँच कार्य होते हैं। इनमें ज्ञानेन्द्रियाँ ही प्रधान हैं। उनको जीतकर अपने वशमें रखना तथा भगवत्सेवाके भावसे सदा सद्विषयोंमें ही लगाये रखना चाहिये। किस इन्द्रियसे क्या न करना और क्या करना चाहिये, इसपर कुछ विचार कीजिये।

(क) आँखोंसे किसी भी गंदी वस्तुको, स्त्रियोंके रूपको, स्त्रियोंके किसी भी अंगको, स्त्रीके चित्रको (इसी प्रकार स्त्रीके लिये पुरुषके रूप, अंग या चित्रको) और मनमें काम-क्रोध-लोभादिके विकार पैदा करनेवाले सिनेमा, नाच तथा अन्यान्य दृश्योंको कभी नहीं देखना चाहिये। सदाचारी अजामिल थोड़ी ही देरके लिये एक गंदे दृश्यको देखकर उसीके प्रभावसे पवित्र ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर महापापी बन गये थे।

आँखोंसे भगवान्‌के विष्णु, राम, कृष्ण, शंकर, दुर्गा, सूर्य आदि किसी भी मंगलविग्रहको, उनकी पूजा-आरतीको, पवित्र तीर्थस्थानोंको, भगवान्‌की प्रकृतिकी दर्शनीय शोभाको, सुरुचि और सद्भाव उत्पन्न करनेवाले चित्रों तथा दृश्योंको, संत-महात्माओंके स्थानोंको और संत-महात्माओंको देखना चाहिये।

(ख) कानोंसे किसीकी भी निन्दा नहीं सुननी चाहिये, फिर भगवान्‌की, संत-महात्माओंकी, गुरुकी और शास्त्रोंकी निन्दा तो कभी किसी हालतमें भी नहीं सुननी चाहिये। अपनी प्रशंसा, दूसरोंके दोष, अश्लील और कुरुचि उत्पन्न करनेवाले गायन और भाषण, विकार पैदा करनेवाली बातें, नास्तिकोंके कुतर्क, गंदे हँसी-मजाक, भोग-बुद्धिको उत्तेजना देनेवाले, वैर-विरोध बढ़ानेवाले तथा हिंसा, मांसाहार, व्यभिचार आदि पाप-प्रवृत्तियोंको जगानेवाले शब्द और स्त्रियोंके शृंगार तथा रूप (स्त्रियोंके लिये पुरुषोंके) आदिके वर्णन नहीं सुनने चाहिये। इसके विपरीत भगवान्‌की लीलाकथाएँ, भगवान्‌के महत्त्व, तत्त्व, स्वरूप और प्रभावको जनानेवाले तथा उनकी प्राप्तिके साधन—ज्ञान, भक्ति, कर्म, उपासना आदिका निर्देश करनेवाले शास्त्र, भाषण, प्रवचन, सदुक्तियाँ, वैराग्य, सद्भाव, सदाचार, समता और सच्चे सुखको प्राप्त करानेवाली युक्तियाँ, भक्तों, संतों और महापुरुषोंकी जीवनगाथाएँ, अपने दोष और दूसरोंके सच्चे गुणोंकी बातें, भगवान्‌का नाम-गुण-कीर्तन, उपनिषद्, स्मृतिशास्त्र और देशी-विदेशी महात्माओंके दिव्य उपदेश सुनने चाहिये।

(ग) नाकसे मानसिक तथा शारीरिक रोग उत्पन्न करनेवाली गन्ध न सूँघकर सुन्दर सात्त्विक भगवत्-प्रसादी सुगन्ध ही सूँघनी चाहिये।

(घ) रसनासे मनमें काम, क्रोध, लोभादि तथा शरीरमें उत्तेजना, पीड़ा, रोग आदि उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंका रस नहीं लेना चाहिये। मांस, शराब आदि अपवित्र वस्तुएँ कभी नहीं चखनी चाहिये। वस्तुतः स्वादकी दृष्टिसे तो किसी भी वस्तुको नहीं ग्रहण करना चाहिये। शुद्ध सात्त्विक भावोंको उत्पन्न करनेवाले सत्त्वगुण-प्रधान पदार्थोंका परिमित

मात्रामें भगवत्सेवाकी दृष्टिसे सेवन करना चाहिये। जीभके स्वादमें फँसना बहुत ही हानिकारक है। भगवान्‌के चरणामृतका स्वाद अवश्य लेना चाहिये।

(ङ) त्वचासे शरीरको विशेष आरामतलब और जीवनको विलासी, आलसी तथा प्रमादी बनानेवाले पदार्थोंका तथा स्त्रियोंके (स्त्रियोंके लिये पुरुषोंके) अंगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। भगवान्‌की मूर्तियोंके श्रीचरणोंका, संतचरणोंका, महापुरुषोंकी चरण-रजका, माता-पिताकी तथा (स्त्रीके लिये) पतिकी चरणधूलिका, सद्वस्तुओंका और सदाचार बढ़ानेवाले पदार्थोंका ही स्पर्श करना चाहिये।

कर्मेन्द्रियोंमें हाथ-पैरके संयमकी बात आ ही चुकी है। उपस्थका भी यथायोग्य संयम अवश्य रखना चाहिये।

खास बात है वाणीके संयमकी। जो मनुष्य वाणीका संयम नहीं रख सकता, वह परमार्थ-साधनसे तो वंचित रहता ही है, साथ ही लौकिक लाभों और सुखोंसे भी उसे हाथ धोना पड़ता है।

(च) वाणीसे कभी किसीकी निन्दा, चुगली, तिरस्कार, अपमान नहीं करना चाहिये। किसीको गाली या शाप न दे, किसीका जी न दुखाये, जिससे किसीका अहित होता हो, ऐसी बात न कहे, कड़वी वाणी न बोले, मिथ्या-भाषण न करे, स्त्रियोंके रूप, शृंगार तथा अंगोंकी चर्चा न करे (स्त्री पुरुषोंकी न करे), अपनी बड़ाई तथा अभिमान और घमंडकी बात न करे, किसीको लोक-परलोकके प्रलोभन न दिखाये। भगवान्, शास्त्र, गुरु और संतों-भक्तोंकी निन्दा भूलकर भी न करे। जिससे ब्राह्मण, गौ, अतिथि, अनाथ, रोगपीड़ित, विधवा स्त्री आदिका जरा भी अहित हो, ऐसी कोई बात कभी न कहे। व्यर्थ कभी न बोले। हँसी-मजाक न करे और अश्लील शब्द मुँहसे कभी न निकाले।

वाणीसे भगवान्‌के गुण, नाम तथा लीलाओंका कथन, कीर्तन या गायन करे। भगवान्‌के स्वरूप, महत्त्व, तत्त्व और प्रभावकी चर्चा करे। अधिक लोग साथ हों तो मिलकर, नहीं तो अकेले ही भगवान्‌के नामका नित्य कीर्तन करे। भगवान्‌के नाम या मन्त्रका जप करे। वेद-

उपनिषद्, रामायण-महाभारत, भागवत एवं अन्य पुराण तथा संतों और भक्तोंके चरित्रोंका यथाधिकार यथारुचि पारायण करे। अधिक आदमी हों तो इनमेंसे एक सज्जन प्रतिदिन नियमित रूपसे भगवान्की कथा कहें और सब लोग सुनें। अपने सच्चे दोषोंको बिना हिचक आवश्यकतानुसार प्रकट करे और दूसरोंके गुणोंका हर्षके साथ बखान करे। (सर्वोत्तम तो यह है कि दूसरोंके गुण-दोष—किसीका भी वर्णन तो क्या, चिन्तन भी न करे, दिन-रात भगवान्के रूप-गुणोंके चिन्तन एवं कथनमें ही लगा रहे।) परमार्थ, सदाचार, भगवद्भक्ति, सर्वभूतहित तथा ज्ञान-वैराग्यकी चर्चा करे। जिनसे लोगोंमें भगवत्प्रेम, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, आनन्द, शान्ति आदिका विस्तार हो, ऐसे सत्-साधनोंकी बातें करे।

१४-संगका अभाव—भगवान्को छोड़कर अन्य किसी भी वस्तुमें मनकी आसक्ति न रहे, कहीं भी किसी भी भोग-पदार्थमें मन न फँसने पाये। संसारके प्राणिपदार्थोंका अथवा भोगप्रेमीजनोंका संग न करे।

१५-क्रोधका अभाव—अपनी निन्दा या अपकार करनेवालेपर भी क्रोध न हो, क्रोधवश मुँहसे कठोर शब्द न निकलें, मनमें भी जलन न हो, सदा क्षमाभाव रहे। दण्ड देनेकी शक्ति होनेपर भी क्रोधवश हिंसापूर्ण प्रतीकार न करना ही क्षमा है। प्रेम और सुहृदतापूर्ण प्रतीकार, अपकारीका कल्याण चाहते हुए, शान्त-चित्तसे उसे सन्मार्गपर लानेकी नीयतसे करना बुरा नहीं है। क्रोध सारे साधनोंको नष्ट कर देता है।

१६-निर्मल मति—बुद्धि ऐसी होनी चाहिये, जो बुरेको बुरा और भलेको भला बतला सके, जिसमें बुरेकी ओर जाते हुए मन-इन्द्रियोंको रोककर भले तथा सात्त्विक भावकी ओर चलानेकी शक्ति हो। यह तभी होता है, जब सच्चे सत्संगके प्रभावसे बुद्धि भगवान्की ओर लगकर पूर्ण निश्चयात्मिका और सात्त्विकी हो जाती है। तामसी बुद्धि दोषयुक्त होती है, इसीसे उसका निर्णय सर्वथा विपरीत होता है। वह पापको पुण्य, असत्को सत्, बुरेको भला और अकर्तव्यको कर्तव्य बतलाती है। उसमें मन-इन्द्रियोंको सन्मार्गपर ले जानेकी तो शक्ति ही नहीं होती। ऐसा होता

है कुसंगसे और निरन्तर विषय-सेवनमें लगे रहनेसे। अतएव बुद्धिको निर्मल करनेके लिये सदा सत्संग और सद्विषयोंको भगवदर्पण-भावसे सेवन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

१७-सत्यवादिता—जैसा कुछ देखा, सुना या अनुभवमें आया हो, वैसा ही समझा देनेकी नीयतसे, बिना किसी छलके, परहितका ध्यान रखते हुए मीठी भाषामें कहना सत्य है। ऐसे सत्यका ही अवलम्बन करना चाहिये। मिथ्यावादीका तीर्थफल नष्ट हो जाता है।

१८-दृढ़व्रत—अपने निश्चयमें, अपने इष्ट तथा साधनमें और नियम-पालनमें पतिव्रता स्त्रीकी भाँति अडिग रहना चाहिये। किसी भी प्रलोभन, मोह या भयमें फँसकर व्रतका भंग न होने पाये।

१९-सब प्राणियोंमें आत्मोपम भाव—अपनेपर कोई दुःख आये, अपनेको गाली, अपमान, रोग-पीड़ा, अभाव आदि सहने पड़ें तो जैसा कष्ट होता है, वैसा ही सबको होता है, हम जैसे अनुकूलतामें सुखी और प्रतिकूलतामें दुःखी होते हैं, वैसे ही सब होते हैं—इस प्रकार सत्ता और सुख-दुःखमें सबको अपने आत्माके समान ही जानकर सबके साथ आत्मभावसे ही बर्ताव करना चाहिये। अर्थात् हम जैसा भाव तथा बर्ताव अपने लिये चाहते हैं और करते हैं, वैसा ही सब प्राणियोंके लिये चाहना और करना चाहिये।

तीर्थसेवनका परम फल

तीर्थयात्रा या तीर्थसेवनका वास्तविक परम फल है—'भगवत्प्राप्ति' या 'भगवत्प्रेमकी प्राप्ति'। उपर्युक्त उन्नीस गुणोंसे युक्त होकर जो नर-नारी श्रद्धा-विश्वासपूर्वक तीर्थसेवन करते हैं, उन्हें निश्चय ही यह परम फल प्राप्त होता है। इस परम फलकी प्राप्ति अन्यान्य साधनोंसे कठिन बतलायी गयी है—

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्॥

'तीर्थयात्रासे जो फल मिलता है, वह बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञोंसे भी नहीं मिलता।'

अश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥

'जिनमें श्रद्धा नहीं है, जो पापके लिये ही तीर्थसेवन करते हैं, जो नास्तिक हैं, जिनके मनमें संदेह भरे हुए हैं तथा जो केवल सैर-सपाटे और मौज-शौकके लिये अथवा किसी खास स्वार्थसे तीर्थ-भ्रमण करते हैं—इन पाँचोंको तीर्थका उपर्युक्त भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-प्राप्तिरूप परम फल नहीं मिल सकता।'

तीर्थोंमें और क्या-क्या करना चाहिये?

इसलिये श्रद्धा तथा संयमपूर्वक तीर्थसेवन करना चाहिये। तीर्थमें पितरोंके लिये श्राद्ध-तर्पण अवश्य करना चाहिये। इससे पितरोंको बड़ी तृप्ति होती है और उनका शुभाशीर्वाद प्राप्त होता है।

तीर्थोंमें वहाँके नियमोंका आदर करना चाहिये। प्रसाद आदिमें सत्कार बुद्धि रखनी चाहिये। श्रद्धा और सत्कार ही सत्फल उत्पन्न करते हैं। तीर्थोंमें कठोर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। मन, वाणी, शरीरसे किसी प्रकार भी पुरुषको स्त्रीका और स्त्रीको पुरुषका संग नहीं करना चाहिये। तीर्थमें सुयोग्य पात्रोंको (जिसको जब जिस वस्तुकी यथार्थमें आवश्यकता है, वही उस वस्तुका पात्र है।) अपनी शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये। तीर्थमें किये हुए दानकी बड़ी महिमा है। तीर्थयात्रासे लौटकर यथासाध्य ब्राह्मणभोजन तथा पितृश्राद्ध करना चाहिये।

ऊपरके विवेचनसे यह नहीं समझना चाहिये कि उपर्युक्त प्रकारसे किये बिना तीर्थ-सेवनका कोई फल ही नहीं मिलता। जिस वस्तुमें जो स्वाभाविक गुण है, उसका प्रभाव तो होगा ही। अग्निको न जानकर चाहे उसे हम छू लें; उससे हाथ जलेगा ही, क्योंकि यह उसका सहज गुण है। इसी प्रकार तीर्थ-सेवनसे भी तीर्थ-विशेषकी शक्तिके तारतम्यके अनुसार किसी-न-किसी अंशमें पाप-नाश तो होगा ही। हाँ, पापोंका सर्वथा विनाश और परम फलकी प्राप्ति तो उपर्युक्त प्रकारसे तीर्थ-सेवन करनेपर ही होती है। अतएव तीर्थयात्रा सभीको करनी चाहिये। इसमें

देशाटनका लाभ भी मिल जाता है और नयी-नयी बातें सीखने-समझनेको तो मिलती ही हैं। परंतु जहाँतक बने यात्रा करनी चाहिये श्रद्धा और संयमके पाथेयको साथ लेकर ही।

मातृतीर्थ, पितृतीर्थ, गुरुतीर्थ, भार्यातीर्थ और भर्तृतीर्थ

एक बात और है। ऐसे लोगोंको बहुत सोच-समझकर तीर्थयात्रा करनी चाहिये। जिनको कोई खास अड़चन हो, जिनके घरसे चले जानेपर बूढ़े माता-पिताको कष्ट होता हो या पत्नीके चले जानेपर श्रेष्ठ पतिको दुःख पहुँचता हो, ऐसे लोग चाहें तो तीर्थयात्रा न करके अपने भावके अनुसार घरमें ही रहकर तीर्थयात्राका फल प्राप्त कर सकते हैं।

शास्त्रमें पुत्रके लिये माता-पिताको, शिष्यके लिये गुरुको, पतिके लिये पत्नीको और पत्नीके लिये पतिको तीर्थ माना गया है। पद्मपुराण-भूमिखण्डमें इसका इतिहासोंके सहित बड़ा ही विशद और सुन्दर वर्णन है। वहाँ कहा गया है—जो दुष्ट पुरुष वृद्ध माता-पिताका अपमान करता है, उन्हें उचित रीतिसे खाने-पीनेको नहीं देता, कड़वे वचन बोलता है और उनको असहाय छोड़कर चल देता है, वह बार-बार साँप, ग्राह, बाघ तथा रीछ आदि योनियोंको प्राप्त होता है और कुम्भीपाक आदि घोर नरकोंमें युगोंतक पड़ा सड़ा करता है। माता-पिताकी सेवासे, उनको आदरपूर्वक संतुष्ट करनेसे तीनों लोकोंकी तुष्टि होती है। जो पुरुष नित्य अपने माता-पिताके चरण चाँपता है, उसे घरपर ही भागीरथी-स्नानका पुण्य मिलता है। पुत्रोंके लिये माता-पिताके समान कोई तीर्थ नहीं है—

नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां च पितुः समम्।

सूर्य दिनके, चन्द्रमा रात्रिके तथा दीपक घरके अन्धकारको हटाकर उनमें उजियाला करते हैं, परंतु गुरु तो शिष्यके अज्ञानान्धकारको सर्वथा हरकर उसके दिन, रात और घर—तीनोंमें ही उजियाला कर देते हैं—यह समझकर शिष्यको सदा गुरुकी पूजा करनी चाहिये। शिष्योंके लिये

गुरु ही परमपुण्य, सनातन धर्म, परम ज्ञान और प्रत्यक्ष फलदायक परम 'तीर्थ' है—

शिष्याणां परमं पुण्यं धर्मरूपं सनातनम्।
परं तीर्थं परं ज्ञानं प्रत्यक्षफलदायकम्॥

जिस घरमें सदाचारयुक्त, धर्मतत्पर, पुण्यमयी सती पतिव्रता है, उस घरमें सारे देवता नित्य निवास करते हैं। गंगाजी आदि पवित्र नदियाँ, पवित्र समुद्र तथा सारे तीर्थ और पुण्य वहाँ रहते हैं। सत्यपरायणा पवित्र सतीके घरमें समस्त यज्ञ, गौ और ऋषिगण बसते हैं। ऐसी पवित्र भार्याको त्यागकर जो पुरुष धर्म-कार्य करता है, उसके वे सारे धर्म व्यर्थ होते हैं। भार्याके बिना धर्म पुरुषका मित्र नहीं होता। भार्याके समान पुरुषोंको सद्गति देनेवाला कोई दूसरा 'तीर्थ' नहीं है। यदि भार्या भक्ता हो—

तस्माद् भार्यां विना धर्मः पुरुषस्य न सिद्ध्यति।
नास्ति भार्यासमं तीर्थं पुंसां सुगतिदायकम्॥

स्त्रीके लिये पति ही परमेश्वर है, पति ही गुरु है, पति ही परम देवता है और पति ही परम तीर्थ है। जो स्त्री पतिको छोड़कर अकेली रहती है, वह पापयुक्त हो जाती है। स्त्रीको पतिके प्रसादसे ही सब कुछ प्राप्त होता है। स्त्रीका पातिव्रत्य ही समस्त पापोंका नाशक और मोक्षदायक है। जो स्त्री पतिपरायणा है, वही पुण्यमयी कहलाती है। स्त्रियोंके लिये पतिको छोड़कर पृथक् तीर्थ शोभा नहीं देता। पतिका दाहिना चरण उसके लिये प्रयाग है और बायाँ पुष्करराज है। पतिके चरणोदक-स्नानसे ही उसे इन सब तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य मिल जाता है। पत्नीके लिये पति ही सर्वतीर्थमय और पुण्यमय है—

सर्वतीर्थमयो भर्ता सर्वपुण्यमयः पतिः।

किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि गृहस्थोंको स्थावर तीर्थोंकी यात्रा करनी ही नहीं चाहिये। बात इतनी ही है कि बूढ़े माता-पिता, गुरु, पति और भार्या आदिके पालन-पोषण तथा सेवारूप कर्तव्यसे मुँह मोड़कर

इन्हें रोते-बिलखते तथा कष्ट पाते छोड़कर जो नर-नारी तीर्थोंमें जाकर अपना कल्याण चाहते हैं, वे एक बार अपनेको वैसी ही परिस्थितिमें ले जाकर सोच लें। तीर्थ-यात्राके समान ही फल तो उनको घरमें भी भाव होनेपर प्राप्त हो सकता है।

तीर्थयात्राके विभिन्न फल

जो लोग भगवान्‌में मन लगाकर भगवत्सेवाकी बुद्धिसे श्रद्धा तथा संयमपूर्वक तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें मोक्ष या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होती है। जो लोग ऐसी बुद्धि न रखकर किसी लौकिक अथवा पारलौकिक कामनासे ही श्रद्धा-संयमपूर्वक तीर्थयात्रा करते हैं, उनको अपने भाव तथा तीर्थकी शक्तिके अनुसार उनकी कामनाके अनुरूप उचित फल प्राप्त होता है। किसी भी प्रकार हो, तीर्थ-सेवन है निश्चय ही लाभदायक।

तीर्थोंकी वर्तमान बुरी स्थिति

अब अन्तमें एक अप्रिय प्रसंगपर कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। जैसे भगवत्परायण भजनानन्दी महापुरुषोंने अपने पुण्य-बलसे तीर्थोंको तीर्थ बनाया था, वैसे ही आजकल पापाचारी दाम्भिक लोगोंने उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया है। आजकल प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थोंपर जो पापकाण्ड होते हैं, वे बड़े ही भयानक और रोमांचकारी हैं। सच पूछा जाय तो इन्हीं दुराचारोंको देखकर अच्छे लोगोंकी भी श्रद्धा तीर्थोंसे हटती जा रही है। प्रत्येक तीर्थ-प्रेमीको इस ओर ध्यान देकर धर्मके नामपर होनेवाले इस भीषण पापाचारको रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये। तीर्थोंका यह दुरुपयोग शीघ्र ही नष्ट हो जाना चाहिये। नहीं तो भारतके गौरव-स्थल ये तीर्थ लोगोंकी अश्रद्धाके भाजन हो जायँगे।

तीर्थयात्रा किसलिये? तीर्थयात्रामें पाप-पुण्य

तीर्थयात्रा—मौज-आरामके लिये नहीं।
तीर्थयात्रा—सैर-सपाटेके लिये नहीं।
तीर्थयात्रा—मनोरंजनके लिये नहीं।
तीर्थयात्रा—खान-पान-शयनके लिये नहीं।
तीर्थयात्रा—महान् तपस्याके लिये है।
तीर्थयात्रा—परमार्थ-साधनके लिये है।
तीर्थयात्रा—मनकी शुद्धिके लिये है।
तीर्थयात्रा—संयम-नियमके लिये है।
तीर्थयात्रामें—किसीकी सुख-सुविधा छीनना पाप है।
तीर्थयात्रामें—मिथ्या-भाषण करना पाप है।
तीर्थयात्रामें—निन्दा-चुगली करना पाप है।
तीर्थयात्रामें—राजस-तामस भोजन करना पाप है।
तीर्थयात्रामें—पर-स्त्री, पर-पुरुषपर कुदृष्टि करना पाप है।
तीर्थयात्रामें—पर-धनपर मन चलाना पाप है।
तीर्थयात्रामें—सबको सुख-सुविधा देकर पुण्य लूटो।
तीर्थयात्रामें—सत्य-भाषण करके पुण्य लूटो।
तीर्थयात्रामें—भगवान्‌का नाम-गुण गाकर पुण्य लूटो।
तीर्थयात्रामें—सात्त्विक स्वल्प आहार करके पुण्य लूटो।
तीर्थयात्रामें—अष्ट-मैथुनका त्याग करके पुण्य लूटो।
तीर्थयात्रामें—धन-वैभवमें वैराग्य करके पुण्य लूटो।

तीर्थमें जाकर

(१)

तीर्थमें जाकर—दूसरोंको आराम दो, स्वयं आराम मत चाहो।

तीर्थमें जाकर—दूसरोंको सुविधा दो, स्वयं सुविधा मत चाहो।

तीर्थमें जाकर—दूसरोंको सम्मान दो, स्वयं सम्मान मत चाहो।

तीर्थमें जाकर—दूसरोंको सेवा दो, स्वयं सेवा मत चाहो।

इससे—अपने-आप सबको आराम मिलेगा। अपने-आप सबको सुविधा मिलेगी। अपने-आप सबको सम्मान मिलेगा। अपने-आप सबको सेवा मिलेगी।

तीर्थमें जाकर—दूसरोंकी आशा भरसक पूरी करो, दूसरोंसे आशा मत करो।

तीर्थमें जाकर—दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करो, अपना अधिकार त्याग दो।

तीर्थमें जाकर—दूसरोंके साथ उदारता बरतो, अपने साथ न्याय बरतो।

तीर्थमें जाकर—दूसरोंके छोटे दुःखको बड़ा समझो, अपने दुःखकी परवा मत करो।

(२)

तीर्थमें जाकर—बुरी आदत छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—झूठा मान छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—कटु वचन छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—अकर्मण्यता छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—झूठ बोलना छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—रिश्वतखोरी छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—बेईमानी-चोरी छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—स्वार्थपरता छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—ईर्ष्या-डाह छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—शराब-कबाब छोड़ो।

तीर्थमें जाकर—बीड़ी-तम्बाकू छोड़ो।
तीर्थमें जाकर—भाँग-गाँजा छोड़ो।

दया करो, ममता नहीं।
सेवा करो, अहसान नहीं॥
प्रेम करो, चाह नहीं।
भक्ति करो, भोग नहीं॥

तीर्थयात्रामें क्या करें ?

तीर्थयात्रामें—सादा भोजन करो तो जीभ-मन वशमें होंगे।

तीर्थयात्रामें—सबकी सेवा करो तो तीर्थका फल मिलेगा।

तीर्थयात्रामें—सादे कपड़े पहनो तो सीधापन प्राप्त होगा।

तीर्थयात्रामें—भगवान्का नाम लो तो जीवन सफल होगा।

तीर्थयात्रामें—भगवान्का नाम गाओ।

तीर्थयात्रामें—भगवान्के गुण गाओ।

तीर्थयात्रामें—भगवान्में मन लगाओ।

तीर्थयात्रामें—भगवान्में बुद्धि लगाओ।

तीर्थयात्रामें—भगवान्का सदा स्मरण रखो।

तीर्थयात्रामें—भगवान्को सब समर्पण कर दो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें कभी अभक्ष्य-भक्षण न करोगे, यह व्रत लो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें कभी झूठ न बोलोगे, यह व्रत लो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें कभी क्रोध नहीं करोगे, यह व्रत लो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें कभी पर-स्त्रीको बुरी दृष्टिसे नहीं देखोगे, यह व्रत लो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें कभी दूसरोंका बुरा न करोगे, यह व्रत लो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें सदा भगवान्को याद रखनेकी चेष्टा करोगे, यह व्रत लो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें कभी कुसंग न करोगे, यह व्रत लो।

तीर्थमें जाकर—जीवनमें प्रतिदिन २१,६०० भगवान्के नाम लोगे, यह व्रत लो।

तीर्थयात्रामें कर्तव्य, तीर्थयात्रामें छोड़नेकी चीजें

तीर्थयात्रामें—नाम-जप करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—मौन रहना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—व्रत-उपवास करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—अहिंसा-सत्यका पालन करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—दोष-त्यागका पालन करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—शौच-सदाचारका पालन करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—तप-स्वाध्याय करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—संतोष धारण करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—श्रद्धापूर्वक स्नान-दर्शन करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—पितरोंका श्राद्ध करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—निष्काम दान करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—नि:स्वार्थ सेवा करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—सबके गुण देखना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—भगवद्‌गुण सुनना-गाना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—भगवान्‌का निरन्तर स्मरण करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—सबसे विनम्र व्यवहार करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—सबका आदर-सम्मान करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—सबसे प्रेम करना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—रेलके डिब्बोंको, अपने कपड़ोंको साफ-सुथरा रखना कर्तव्य है और—

तीर्थयात्रामें—डिब्बेमें, धर्मशालामें, रास्तेमें कभी न थूकना, फलोंके छिलके न डालना, पानी न उडेलना, बीड़ी-सिगरेट (कहीं) न पीना कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—आसक्तिका त्याग कर्तव्य है।

तीर्थयात्रामें—कामनाओंका त्याग कर्तव्य है।
तीर्थयात्रामें—ममताका त्याग कर्तव्य है।
तीर्थयात्रामें—अहंकारका त्याग कर्तव्य है।
तीर्थयात्रामें—केवल भगवान्‌में आसक्ति करो।
तीर्थयात्रामें—केवल भगवत्प्रेमकी कामना करो।
तीर्थयात्रामें—केवल भगवान्‌में ही ममता करो।
तीर्थयात्रामें—केवल भगवान्‌के दासत्वका अहंकार करो।
तीर्थयात्रामें—दम्भ छोड़ो, दर्प छोड़ो, मान छोड़ो, शान छोड़ो।
तीर्थयात्रामें—गर्व छोड़ो, क्रोध छोड़ो, काम छोड़ो, नाम छोड़ो।
तीर्थयात्रामें—लोभ छोड़ो, मोह छोड़ो, द्रोह छोड़ो, द्वेष छोड़ो।
तीर्थयात्रामें—वैर छोड़ो, संग छोड़ो, ढंग छोड़ो, रंग छोड़ो।
तीर्थयात्रामें—क्रोध करो अपने दोष-दुर्गुणोंपर।
तीर्थयात्रामें—लोभ करो भगवान्‌के भजनका।
तीर्थयात्रामें—मोह करो भगवान्‌की महिमामें।
तीर्थयात्रामें—संग करो भगवद्भक्तोंका, संतोंका।

राजनीति, धर्म और तीर्थ

भगवान् श्रीकृष्णने तामसी बुद्धिका स्वरूप बतलाते हुए अर्जुनसे कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८। ३२)

'अर्जुन! तमोगुणसे आवृत जो बुद्धि अधर्मको धर्म मानती है तथा और भी सभी पदार्थोंको विपरीत (उलटा) ही समझती है, वह बुद्धि तामसी है।'

दैव-दुर्विपाकसे या किसी भी कारणसे आज जगत्‌के मानव-समाजकी बुद्धि प्रायः तमसाच्छन्न हो रही है, इसीसे आज सारा जगत् ईश्वर तथा सच्चे ईश्वरीय धर्मसे मुँह मोड़कर 'अधिकार' और 'अर्थ' के पीछे उन्मत्त हो रहा है। मानव-जीवनके असली उद्देश्य भगवत्प्राप्ति, मुक्ति या परम शान्तिकी प्राप्तिको भूलकर वह जिस किसी भी प्रकारसे भौतिक सुखकी—जो मनुष्यको वास्तविक सुखसे सदा ही वंचित रखता है और सुखके नामपर नये-नये दुःखोंकी सृष्टि करता रहता है—प्राप्तिके लिये नैतिक-अनैतिक सभी प्रकारके कर्म करनेको प्रस्तुत है। इसीसे वह मानव-जीवनके पवित्रतम आध्यात्मिक उत्कर्षकी अवहेलना करके भौतिक सुख-साधनोंकी अधिक-से-अधिक प्राप्तिके प्रयत्नमें संलग्न है और इसीमें अपनी तथा विश्वकी उन्नति समझता है और इसीको परम कर्तव्य या एकमात्र धर्म मान रहा है।

एक आदरणीय महात्मा कहा करते हैं कि 'धर्महीन राजनीति विधवा है और राजनीतिरहित धर्म विधुर है।' बात वास्तवमें सत्य ही है, परंतु वर्तमान राजनीतिमें—जहाँ तमोगुणकी प्रधानता है—सच्चे धर्मको स्थान मिलना बहुत ही कठिन है।

पाश्चात्य विचारशील विद्वान् श्रीशॉ डेसमण्ड (Shaw Desmond)

महोदयकी 'World-birth' नामक एक पुस्तक लगभग अठारह वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी। उसमें उन्होंने राजनीति तथा वर्तमान राजनीतिक जगत्की आलोचना करते हुए लिखा था—

"Like horse-racing, there is something in politics which degrades. They turn good men into bad men and bad into worse. They blunt the fineness of youth and destroy the sensitive evaluation of the things by which we live. And the reason is as plain as the cloud which blots out the sun. Our politics today are always "Power-politics".

'घुड़दौड़के जुएकी तरह राजनीतिमें ऐसा कुछ है, जो मनुष्यको नीचे गिरा देती है। वह अच्छे मनुष्यको बुरा और बुरेको और भी जघन्य बना देती है। वह यौवनकी तीव्रताको कुण्ठित करती और जीवनके लिये आवश्यक वस्तुओंके मूल्यांकनकी निपुणताको घटा देती है। इसका कारण उस बादलके टुकड़ेके समान बिलकुल स्पष्ट है, जो सूर्यको सर्वथा ओझल कर देता है। हमारी आजकी राजनीति सदा अधिकारपरक ही है।'

वे फिर लिखते हैं—

"The young politician, the flush of idealism upon the brow of innocence, eager to win his spurs, soon after he has been returned under the auspices of his party or group to congress or parliament or Chamber of Deputies finds himself as we have already indicated, faced with the following problem.

He has already been coached in the gentle art of *suppressio veri* and of fictitious promise in order to get elected, and as the 'old hands' will tell him no man on this earth would stand a chance if he told the truth the whole truth and nothing but truth.

"Now, he can either stand out against his party leaders, veterans in sin, who neither in life nor in death will forgive him, and find himself relegated to back stage with no chance to make his young eager voice heard, or he can go in with those leaders as a Yes-Man, as they are Known, and so at long last perhaps be rewarded with the lollipops of office. Jam or ginger, he can take his choice. If he, through idealism, fight the Machine, he will be fiattened out by the party steam-roller and will be so quick going that he wont even know he has come if he rides on the Juggernaut, he will be patted on the back by the 'Old hands' and spoiled as so often Age spoils youth.

Have we not seen in all these countries the once young idealists "Sell out" as the process is perfectly well known to Power and Privilege and with the politicians capacity for self deception unhappily sometimes quite sincerely? Have we not seen them turn their upholstered backs upon the leanness of old comrades and old ideals, and find themselves sometimes, though not always, ultimately rewarded by power and position to their infernal eternal undoing both in this world to come ! Poor devils usually democratic devils of that ilk.................

कूटनीतिकी चालोंसे अनभिज्ञ और आदर्शवादके उत्साहसे परिपूर्ण तथा सफलता-प्राप्तिके लिये उत्सुक तरुण राजनीतिज्ञ अपने दल या समुदायके टिकटपर काँग्रेस, लोकसभा या प्रतिनिधि-सभामें चुन लिये जानेके पश्चात् तुरंत ही अपने-आपको एक उलझनमें पाता है।

उसे चुनावमें सफलता प्राप्त करनेके लिये सत्यको छिपाने और झूठे

वादे करनेकी शिष्ट कलामें पहलेसे ही दीक्षित कर दिया गया होता है। पुराने अनुभवी पुरुष उसे बतलाते हैं कि इस पृथ्वीमण्डलमें ऐसा कोई मनुष्य है ही नहीं, जो सत्य, पूर्ण सत्य, विशुद्ध सत्य बोलकर सफल हो सके।

अब उसके सामने दो ही मार्ग रहते हैं—या तो वह अपने दलके नेताओं—पापमें अभ्यस्त खूसटोंके विरुद्ध—जो न तो इस जीवनमें और मृत्युके बाद ही उसे क्षमा करेंगे—खड़ा हो और अपनेको रंगमंचके पीछे—नेपथ्यमें फेंका हुआ पाये, जहाँसे वह अपनी तरुण उत्सुकतापूर्ण आवाजको सुनानेके लिये कोई अवसर ही न पा सके, या वह उन नेताओंके अनुकूल बनकर उन्हींकी भाँति समादृत होकर रहे, जिससे अन्तमें कदाचित् वह 'पद' रूप प्रसादसे पुरस्कृत किया जाय। मुरब्बा या अदरकका पानी दोनोंमेंसे वह जो चाहे पसंद कर ले। यदि आदर्शवादके पीछे पड़कर वह इस पुरानी मशीनसे लड़नेकी ठानेगा तो उसपर उस मशीनके वाष्पचालित बेलनका इतना दबाव पड़ेगा कि उसे पिस जाना पड़ेगा और वह इतनी फुर्तीसे बाहर फेंक दिया जायगा कि उसको पता भी न चलेगा कि मैं भीतर आया था। पर यदि वह उस प्रेषणकारी यन्त्रपर आरूढ़ हो गया तो वे पुराने अनुभवी हाथ उसकी पीठ ठोकेंगे और फलतः जैसे बुढ़ापा जवानीको विरस कर देता है, वैसे ही उसका भी नैतिक पतन हो जायगा।

क्या हमें इन सब देशोंमें आदर्शवादके ऐसे तरुण भक्त नहीं मिले हैं, जिन्होंने अपने आदर्शवादके प्रेमको कुचलकर अपने-आपको 'पद' और विशेषाधिकारके मोल बेच डाला है? खेदकी बात तो यह होती है कि कई बार वे आत्मवंचनाके वशीभूत हो—जिसकी प्रत्येक राजनीतिके व्यवसायीमें क्षमता आ जाती है—शुद्ध नीयतसे अपने आदर्शोंको बेच डालते हैं। बहुधा यह भी देखा गया है कि वे अपने पुराने सहयोगियों और आदर्शोंका परित्याग करके बादमें कभी-कभी सदा नहीं—सत्ता और पदसे पुरस्कृत हुए हैं और इसके लिये उन्हें इस लोक और परलोकसे सदाके लिये हाथ धोना पड़ा है, प्रायः जनतन्त्रवादी भूतकी यही दशा होती है।

पाश्चात्य देशोंकी और उसीका अनुकरण करनेवाले भारतवर्षकी राजनीतिका आज यही स्वरूप है। इसके साथ सच्चे धर्मका मेल हो और पतिव्रता सतीकी भाँति वह धर्मकी अनुगता होकर रहे, यह बहुत कठिन है। आज तो बहुत-से लोग—पीछे नहीं—पहलेसे ही 'पद' और 'अर्थ' की अभिलाषासे ही लोकसभा आदिमें जाना चाहते हैं। 'कर्तव्य और त्याग' का पवित्र आसन ही आज 'अधिकार और अर्थ' के द्वारा अधिकृत कर लिया गया है। ऐसी अवस्थामें धर्मको राजनीतिके साथ स्थान मिलना बहुत ही कठिन है। हाँ, महात्मा गाँधी होते या उनकी नीतिकी प्रधानता राजनीतिमें अक्षुण्ण रहती तो कुछ आशा अवश्य थी। महात्माजीने राजनीतिके क्षेत्रमें बड़े महत्त्वके कार्य किये, परंतु उनका प्रत्येक कार्य ईश्वर-विश्वास तथा सत्य, अहिंसारूप धर्मपर अवलम्बित होता था, इससे उनकी राजनीतिमें व्यक्तिगत स्वार्थ-मूलक दोषोंका प्रवेश बहुत ही कम हो पाता था तथापि जो लोग धर्मभीरु हैं तथा देशकी राजनीतिको पवित्र देखना चाहते हैं और जिनकी चित्त-वृत्ति प्रवृत्तिपरायण है, उनको गीताके उपदेशको सामने रखकर आसक्ति तथा फलानुसंधानसे रहित होकर राजनीतिके क्षेत्रमें आना और काम करना चाहिये। देशकी वर्तमान स्थितिमें ऐसे राग-द्वेषहीन धर्मपरायण कर्मठ लोगोंकी बड़ी आवश्यकता है।

पर जो लोग केवल भगवत्परायण रहकर भजन ही करना चाहते हैं, जिनकी प्रकृति निवृत्तिपरक है और जो राग-द्वेषपूर्ण जनसंसद्से दूर रहनेमें ही अपना हित समझते हैं, उन्हें अवश्य ही राजनीतिसे अलग होकर भजनपरायण रहना चाहिये। यही उनके लिये निरापद मार्ग है। ऐसे भजनानन्दी पुरुषोंको एकान्तमें या पवित्र तीर्थस्थानोंमें रहकर सादा-सीधा, बहुत ही कम खर्चीला, सदाचार तथा भजनसे भरा जीवन बिताना चाहिये। यद्यपि आजकल पवित्र एकान्त स्थान मिलना कठिन है और तीर्थोंमें भी पवित्रतासे पूर्ण सात्त्विक वातावरण नहीं रह गया है, तथापि खोजनेपर तीर्थोंमें ऐसे एकान्त पवित्र स्थल अब भी प्राप्त हो सकते हैं। तीर्थोंका महत्त्व इसी कारण है कि वहाँ भगवत्प्राप्त या भजनानन्दी साधकोंने

निवास किया था। अब भी भजनानन्दी पुरुष यदि तीर्थोंमें रहने लगें तो तीर्थोंके पवित्र विग्रहमें जो मलिनता या कालिमा आ गयी है, वह सहज ही दूर हो सकती है और तीर्थयात्रियोंके लिये तीर्थ पुनः पावन बन जा सकते हैं।

तीर्थोंके बाह्य सुधारकी भी आवश्यकता है, साथ ही पुराने तीर्थस्थानों तथा मन्दिरोंके जीर्णोद्धारका भी महान् कार्य है, जो परमावश्यक है। दक्षिणके महान् तीर्थोंमें सुशोभित अत्यन्त कलापूर्ण विशाल मन्दिर भारतकी भक्ति तथा कलापूर्ण संस्कृतिके जीते-जागते मूर्तरूप हैं—ये जगत्‌के आश्चर्य हैं। इनके रक्षणावेक्षणका कार्य भी, यदि कुछ पवित्र प्रवृत्तिवाले लोग दूसरे कार्योंसे पृथक् होकर वहाँ रहने लगें तो सहजमें सम्पन्न होनेकी सम्भावना है।

हिंदुओंके ये पवित्र तीर्थ हिंदू-संस्कृतिकी रक्षा और विभिन्न प्रदेशोंमें रहनेवाले विभिन्न भाषा-भाषी नर-नारियोंको एकताके पवित्र सूत्रमें बाँधे रखनेके लिये परम उपयोगी तथा श्रेष्ठ साधन हैं। अतः राजनीतिक दृष्टिसे भी इन धर्मस्थानोंकी सुरक्षा तथा सेवा परम आवश्यक है।

भारतकी राजनीति धर्मसे पृथक् नहीं थी और भारतवर्षका धर्म प्रत्येक नीतिके साथ संयुक्त था। भगवान्‌की मंगलमयी कृपासे फिर ऐसा हो जाय तो जगत्‌के लिये एक महान् आदर्श उपस्थित हो।

मधुर

जैसे शरणागतिके क्षेत्रमें सच्चे निष्कपट दैन्य और भगवान्‌में होनेवाले विश्वासपर रीझकर सर्वशक्तिमान् अनन्तैश्वर्य भगवान्—कोई भी, कैसा भी पापी, तापी उनकी शरणमें आता है और कहता है 'मैं तुम्हारा हूँ' उसपर सहज ही अपनी कृपासुधा उँडेल देते हैं और सब प्रकारसे उसे शरणदान देकर उसके लोक-परलोकका सारा भार स्वयं लेकर उसे सर्वत्र सदाके लिये निर्भय कर देते हैं। वैसे ही प्रेमके पवित्र क्षेत्रमें केवल 'अनन्य प्रेम' पर रीझकर अनन्त महिमामय भगवान् अपने समस्त प्रेमको उसपर न्योछावर करके उसके अपने बन जाते हैं।

भगवान् श्यामसुन्दरकी अभिन्नस्वरूपा उन्हींकी नित्य ह्लादिनीशक्ति, दिव्य प्रेमकी महान् महिमामयी मूर्ति श्रीराधारानी सदा ही श्रीकृष्णमयी ही हैं। वहाँ एक ही परम तत्त्व दो रूपोंमें लीलायित हैं; परंतु प्रेमियोंके परम आदर्शरूपमें उनकी लीलामाधुरीका दिव्यातिदिव्य परम पावन रसप्रवाह भी परस्पर प्रेमरसास्वादनके लिये सदा चलता ही रहता है। वे श्रीश्यामसुन्दरसे अनन्य प्रेम करती हैं और उनसे किस प्रकार उनका मिलन होता है—इसका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराती हुई वे उन्हीं अपने परम प्रियतमसे कहती हैं—

तुम अनन्त सौन्दर्य-सुधा-निधि,
तुममें सब माधुर्य अनन्त।
तुम अनन्त ऐश्वर्य-महोदधि,
तुममें सब शुचि शौर्य अनन्त॥
सकल दिव्य सद्‌गुण-सागर तुम
लहराते सब ओर अनन्त।
सकल दिव्य रस-निधि तुम अनुपम,
पूर्ण रसिक, रसरूप अनन्त॥

मेरे श्याम! तुम अनन्त सौन्दर्य-सुधाके समुद्र हो, तुम्हारे अंदर सम्पूर्ण

माधुर्य अनन्तरूपसे भरा है। तुम अनन्त ऐश्वर्यके महान् सागर हो, तुम्हारे अंदर सभी प्रकारका पवित्र शौर्य अनन्तरूपमें पूर्ण है। तुम सभी अनन्त दिव्य सद्गुणोंके समुद्र सभी ओरसे लहरा रहे हो और तुम समस्त अनुपम अनन्त दिव्यरसोंके भण्डार, स्वयं पूर्ण रसिक और रसरूप हो।

इस प्रकार जो सभी गुणोंमें,
रसमें अमित असीम अपार।
नहीं किसी गुण-रसकी उसे
अपेक्षा कुछ भी किसी प्रकार॥
फिर मैं तो गुणरहित सर्वथा,
कुत्सित-गति, सब भाँति गवाँर।
सुन्दरता-मधुरता, रहित कर्कश
कुरूप अति दोषागार॥

इस प्रकार तुम्हारे समस्त गुणोंका, समस्त रसोंका न कोई परिणाम है, न उनकी कहीं सीमा है और न उनका पार ही है। ऐसे तुम अनन्त गुणरसमयको किसी प्रकार भी किस गुण-रसकी आकांक्षा हो सकती है? समस्त गुण-रसमें पूर्ण अनन्तके कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसका अभाव हो? फिर मैं (राधा) तो गुणसे सर्वथा हीन हूँ, मेरी बुरी चाल है (इसीसे लोग मुझमें दोषारोपण करते हैं) और मैं सब तरहसे मूर्ख-गँवार हूँ। मुझमें न सौन्दर्य है, न माधुर्य ही है। मैं अनन्त कर्कश स्वभावकी कुरूपा हूँ और दोषोंकी तो भण्डार ही हूँ।

नहीं वस्तु कुछ भी ऐसी,
जिससे तुमको मैं दूँ रस-दान।
जिससे तुम्हें रिझाऊँ,
जिससे करूँ तुम्हारा पूजन-मान॥
एक वस्तु मुझमें अनन्य
आत्यन्तिक है विरहित उपमान।

मुझे सदा प्रिय लगते तुम—
यह तुच्छ किंतु अत्यन्त महान॥

मेरे पास कोई भी कुछ भी ऐसी वस्तु ही नहीं, जिससे मैं तुमको रसदान दे सकूँ, जिससे तुम्हें रिझा सकूँ अथवा जिससे तुम्हारा तनिक भी पूजन-सम्मान कर सकूँ। (एक ओर तो तुम अनन्त सद्गुण दिव्यरसके असीम समुद्र, दूसरी ओर मैं केवल गुणरहित ही नहीं समस्त दोषोंकी अगाध सागर। मैं अपना कुछ भी देने जाऊँ तो वह तुम्हारा तिरस्कार और अपमान ही होगा।) हाँ, मेरे पास एक वस्तु है, जिसकी कहीं भी मेरे लिये उपमा नहीं। वह वस्तु तुच्छ होनेपर भी (तुम्हारी दृष्टिमें) महान् है। वह है— तुम्हारे प्रति मेरी अनन्य, आत्यन्तिक प्रीति— एकमात्र तुम ही मुझको नित्य-निरन्तर अनन्य तथा आत्यन्तिकरूपमें प्रिय लगते हो। यह प्रियता—

रीझ गये तुम इसी एक पर,
किया मुझे तुमने स्वीकार।
दिया स्वयं आकर अपनेको,
किया न कुछ भी सोच-बिचार॥
भूल उच्चता, भगवत्ता सब, सत्ताका सारा अधिकार।
मुझ नगण्यसे मिले तुच्छ बन, स्वयं छोड़ संकोच सँभार॥

'मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर! इसी एक (प्रियता)-पर तुम रीझ गये और तुमने मुझको स्वीकार कर लिया। (मैं तो तुम्हारी सेवामें पहुँची ही नहीं, क्या लेकर जाती, पर) तुमने स्वयं आकर अपने-आपको मुझे दे दिया। जरा भी सोच-विचार नहीं किया। अपनी सारी उच्चताको (महान् तपस्वी मुनि, देवता तुम्हारी सेवामें रहना चाहते हैं, पर तुम्हारी इतनी उच्चता है कि वे ध्यानमें भी तुम्हें नहीं पा सकते।) सारी भगवत्ताको (स्वयं षडैश्वर्योंसे पूर्ण सर्वलोकमहेश्वर, अनन्त दिव्य गुणसमुद्र भागवती शक्तिके परमाश्रय-स्वरूपको) सम्पूर्ण सत्ताके पूर्णाधिकारको (असंख्य लोकपाल, सृष्टिके नियामक-शासक देवगण जिस सत्तासे सत्ता प्राप्त

करते हैं, जिसके पूर्णाधिकारमें रहते हैं, उस सत्ताको) भूलकर मुझ नगण्यसे मिले—(अनन्त शक्ति सत्ता-गुण-समुद्रके रूपमें नहीं,)—तुच्छ बनकर (अत्यन्त छोटे बनकर), स्वयं सारे संकोचको, उच्चताके सारे भारको छोड़कर।*

'मानो अति आतुर मिलनेको, मानो हो अत्यन्त अधीर।
तत्त्वरूपता भूल सभी नेत्रोंसे लगे बहाने नीर॥
हो व्याकुल, भर रस अगाध, आकर शुचि रस-सरिताके तीर।
करने लगे परम अवगाहन, तोड़ सभी मर्यादा धीर'॥

'केवल लज्जा-बड़प्पन भूलकर, लज्जा-संकोच छोड़कर ही नहीं आये, परंतु मुझको प्रेमास्पदा मानकर तथा स्वयं प्रेमी बनकर ऐसे आये मानो मिलनेके लिये आतुर हो रहे हो। मानो अत्यन्त अधीर हो रहे हो। तुम अपनी सारी तत्त्वरूपता (सर्वमय-सर्वातीत, सविशेष-निर्विशेष, सर्वगुणाधार, सर्वगुणातीत, सर्वरहित, सर्वाधाररूप तत्त्व)-को भूलकर नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहाते हुए व्याकुल होकर आये। अपनी अगाध रस भर दिया मेरी एकान्त प्रियतामें और उस पवित्र अनन्य प्रियतारूप रस-सरिताके तटपर आकर पहले रसपान किया और फिर महान् धीर होनेपर

---

* इतने बड़े होकर—अज, अविनाशी, पूर्णकाम, नित्यकाम, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, अखिलानन्त, ब्रह्माण्ड-नायक, जिनके एक-एक रोमविवरमें अनन्त ब्रह्माण्ड भरे हैं, ऐसे महिमामय होकर भी इतने छोटे बन गये। जरा भी संकोच नहीं किया। किसी प्रकारकी उच्चताका बोझ रखा ही नहीं। वस्तुतः सर्वविध अनन्त भगवान्‌में ही सर्वविरोधी गुणधर्म एक साथ एक समय रह सकते हैं। वे महान् होकर भी अत्यन्त तुच्छ हो रहते हैं और वे जब अपने किसी प्रेमीसे मिलते हैं, तब अपनी महिमाको लेकर नहीं मिलते, अपनी अनन्तताको लेकर नहीं मिलते। वह अनन्तता तो दिव्य मधुर रसास्वादनका सारा रस ही भंग कर देती है। भगवान् विष्णु या मथुरा-द्वारकाके शौर्यवीर्यमय ऐश्वर्यमय स्वरूपको देखकर तो सरलहृदय गोपांगनाएँ और गोपबालसखा डर जाते हैं। इसीसे जब अनन्त महिमामय भगवान् किसी प्रेमीके प्रेमास्पद-रूपमें उससे मिलते हैं, तब अत्यन्त तुच्छ होकर, सचमुच उससे मिलनेके लिये आतुर होकर, उसके रसपानकी तीव्र और अदम्य पिपासाको लेकर, उसके अपने होकर, उसके लिये व्याकुल होकर ही मिलते हैं।

भी अधीर होकर, सारी मर्यादाको तोड़कर अंदर प्रवेश करके डुबकी लगाने लगे।'

'बढ़ी अमित, उमड़ी रस-सरिता पावन, छायी चारों ओर।
डूबे सभी भेद उसमें, फिर रहा कहीं भी ओर न छोर॥
प्रेमी, प्रेम, परम प्रेमास्पद—नहीं ज्ञान कुछ, हुए बिभोर।
राधा प्यारी हूँ मैं, या हो केवल तुम प्रिय नन्दकिशोर॥'

'फिर तो वह पवित्र तथा पवित्र करनेवाली रससरिता उमड़कर अपरिमित रूपमें बढ़ गयी। उसमें इतनी बाढ़ आ गयी कि वह चारों ओर—सभी दिशाओंमें फैल गयी। सारी भेद-भिन्नता उसमें डूबकर बह गयी, कहीं ओर-छोर रहा ही नहीं, इतनी विभोरता—तन्मयता हो गयी कि कुछ भी बोध नहीं रहा। यह भी पता नहीं रहा कि मैं तुम्हारी प्रिया राधा हूँ या केवल मेरे प्रियतम तुम श्यामसुन्दर नन्दकिशोर हो।'

यह है प्रेमीका प्रेमसमर्पण और प्रेमास्पद प्रभुका उनपर न्योछावर होकर उसका रूप ही बन जाना। कितना पवित्र, कितना मधुर!

परमार्थकी पगडंडियाँ

'भगवान् सब मंगल करते हैं और सदा मंगल करेंगे'— यह विश्वास रखना। संग अच्छा नहीं रहनेपर उसका भी मनपर असर होता ही है और मनके दोष भी अभी सारे दूर नहीं हुए हैं। पर तुम जरा भी निराश न होकर ऐसा निश्चय करो कि—'मैं अपनेको भगवान्‌के अर्पण कर चुका हूँ। मैं 'मेरा' नहीं, भगवान्‌का हूँ। मेरे मन-बुद्धिपर भगवान्‌का अधिकार है। अतएव मेरे मनमें बुरे भाव—विषय-वासना, भोग-कामना, राग-द्वेषके भाव आ ही नहीं सकते। आयेंगे तो ठहर नहीं सकेंगे—या तो तुरंत नष्ट हो जायँगे या भाग जायँगे।'

भगवान्‌की कृपापर दृढ़ विश्वास करना, यह अनुभव करना कि 'उनकी अनन्त कृपा है।' भगवान् जब जो परिस्थिति देते हैं, उसीसे हमको लाभ उठाना चाहिये। किसी भी प्रतिकूल परिस्थितिको अपने विचारके द्वारा अनुकूल बनाया जा सकता है। विश्वाससे अनुकूलता हो सकती है और प्रेममें तो अनुकूलता-प्रतिकूलताका प्रश्न ही नहीं रह जाता, वहाँ तो केवल प्रेमास्पद भगवान्‌का सुख ही एकमात्र उद्देश्य होता है। अतः किसी भी अवस्थामें असंतोष होता ही नहीं।

× × ×

भगवान्‌को सर्वसमर्पण कर देनेके बाद निश्चय ही वह वस्तु भगवान्‌की हो जाती है। फिर भगवान् उसे अपने अधिकारपूर्वक, इच्छानुसार बरतते हैं और इस प्रकार जो भगवान्‌की वस्तु बन जाती है एवं भगवान् जिसे इच्छानुसार निःसंकोच बरतते हैं, उसीका जीवन धन्य है। फिर न तो उसे कुछ पानेकी चिन्ता रहती है, न सोचनेकी ही कोई बात उसके लिये रह जाती है। उसके लिये सोचना, करना-कराना—सब प्रभु अपने जिम्मे ले लेते हैं। वह तो सर्वथा निश्चिन्त और योगक्षेमकी कल्पनाको छोड़कर नित्य-निरन्तर प्रभुके मधुर चिन्तनमें लगा रहता है।

× × ×

भगवान्‌का स्वभाव है कि 'जो उनका हो जाता है, उसे सदाके लिये अपनाकर वे स्वयं उसके बन जाते हैं। भूलना, त्याग करना, हृदयमें न बसना, न बसाना—यह सब तब रहता ही नहीं।'

भगवान्‌ने दुर्वासासे कहा है कि 'ऐसे प्रेमी भक्त मेरा हृदय होते हैं, मैं उनका हृदय होता हूँ। वे मेरे सिवा किसीको नहीं जानते, मैं उनके सिवा और किसीको नहीं जानता।' जब वे स्वयं ही हृदय हो जाते हैं और प्रेमी भक्तको अपना हृदय बना लेते हैं तब त्यागकी तो कल्पना ही नहीं। वे उस प्रेमीके पराधीन हो जाते हैं—उसके मनमें अपने मनका प्रवेश कराकर एक मन, एक प्राण हो जाते हैं। यही परम आदर्श है।

भगवान् इसमें कोई विलक्षण बात नहीं करते। उनका स्वभाव ही ऐसा विलक्षण है। वे जिसको अपने हृदयमें बसा लेते हैं, वह चाहनेपर भी फिर उनसे अलग नहीं हो सकता। उसे तो वहाँ सदाके लिये बँधे रहना पड़ता है। यों प्रेमी भक्त और प्रेमास्पद भगवान् एक-दूसरेके द्वारा बाँधे जाते हैं और एक-दूसरेको बाँध लेते हैं। यह अनन्त मायाके बन्धनोंसे मुक्त स्थितिमें होनेवाला बन्धन बड़ा ही विलक्षण, दिव्य, मधुर होता है। अतएव इससे मुक्ति न भगवान् चाहते हैं, न प्रेमी चाहता है।

× × ×

सच्ची इच्छाको भगवान् अवश्य पूरा करते हैं। तुम ऐसा मानते ही क्यों हो कि 'भगवान्‌ने कुछ बाकी रखा है।' तुम बस, विश्वास करके यह मान लो कि 'भगवान् मेरे हैं और मैं उनका हूँ।' उनकी कृपा तो अपार है ही और वह भी अहैतुकी है। पर प्रेममें तो कृपाकी भी कोई महत्ता नहीं रहती। प्रेमीके प्रेम-रसास्वादनके लिये भगवान् स्वयं लालायित रहते हैं। हम ऐसे भगवान्‌के सुखमें सुखी रहनेवाले बन जायँ कि बस, भगवान्‌को ही हमारी सदा चाह बनी रहे, वे हमें अपने पास रखनेमें और हमारे पास रहनेमें सुखका अनुभव करें।

× × ×

यह निश्चित विश्वास रखो कि तुमपर श्रीकृष्णका परम अनुग्रह है। सारी चिन्ताओंको छोड़कर एकमात्र श्रीकृष्णका ही चिन्तन करो। फिर जहाँ, जब जो कुछ करना-कराना होगा, वे अपने-आप ही करें-करायेंगे। अब भी वे ही करते-कराते हैं। पर तुम अपनी चिन्ता आप करने लगते हो, इससे उनके करनेका अनुभव नहीं कर पाते हो। × × × इस गंदे शरीरकी तो बात ही क्यों सोचते हो? तुम तो यह शरीर नहीं हो। तुम जो हो, सदा उनके पास ही हो, वे सदा ही तुम्हारे पास हैं। वे तुमको कभी छोड़ना ही नहीं चाहते, तुम चिन्ता क्यों करते हो? निरन्तर उनकी संनिधिका अनुभव करके मुग्ध होते रहो। परमानन्द मानो, परमानन्द मनाओ।

जब भगवान्ने तुमको अपना लिया और तुम भगवान्के हो गये, तब तुम्हें क्यों दुःख सहना होगा, दुःख ही क्यों होगा? और यदि कहीं होगा, तो उसे भगवान् ही भोगेंगे, तुम क्यों भोगोगे? जिसके पास मन है, वही मनके सुख-दुःख भी भोगेगा। किसीने मुझे अपना मकान दे दिया। मैं उसे लेकर उसमें नित्य रहने लगा। फिर उस मकानकी सर्दी-गरमी, गंदगी-सफाई मैं ही तो भोगूँगा, देनेवाला क्यों भोगेगा? अतएव भगवान्के होकर तुमको तो सदा-सदा परम सुखी ही रहना चाहिये।

सुख-दुःख भोगना हो तो वे अपने-आप भोगें और वे ही भोगते भी हैं। तुम उनके हृदयकी भीतरी कोठरीमें घुसकर देखो तो तुम्हें पता लगे। सर्वथा निर्लेप रहते हुए भी हमारे सुख-दुःखके एकमात्र भोक्ता वे ही हैं; निस्संदेह—

भोग रहे हैं सुख-दुख सारा सदा हमारे प्रिय भगवान।
बैठे अंदर काल-कोठरीमें उसको निज मन्दिर मान॥
कभी नहीं वे जरा ऊबते, नहीं जताते कुछ अहसान।
व्यर्थ छेड़ते रहते हैं हम मूढ़-बुद्धिकी मिथ्या तान॥

× × ×

संसारमें सर्वत्र भगवान् भरे हैं—इस बातको न देखकर हम अपने मनकी अनुकूलता खोजते रहते हैं। इसीसे दु:ख बना रहता है। सदा-सर्वत्र भगवान्‌को देखें, उनका अनुभव करें। वे हमारे हैं, हम उनके ही हैं—यह सदा अनुभव करते रहें। फिर संसारकी कामना-वासना कहाँ रह सकेंगी ? कैसे रह सकेंगी ?

× × ×

'भगवान् नित्य तुम्हारे पास हैं'—इस बातका पक्का विश्वास रखो। अनुभव कम होता है तो कोई बात नहीं। सत्यका अनुभव होते क्या देर लगती है? जब होगा, तब प्रत्यक्ष ही हो जायगा सदाके लिये। मनमें यह विश्वास रखना चाहिये।

× × ×

शरीर कहीं भी रहे, उनको तो नित्य-निरन्तर साथ रहना ही पड़ेगा। एक क्षण भी अलग रहें या रहने दें—यह उनका स्वभाव ही नहीं है। हम चाहे उन्हें न देख पायें—पर वे तो सदा हमें देखते—मुसकराते रहते हैं और बीच-बीचमें विचित्र भाव-भंगिमाओंके द्वारा अपना अनुभव भी कराते रहते हैं। उनका दृढ़तम सम्बन्ध ऐसा विचित्र है कि वह कभी भंग तो हो ही नहीं सकता, क्षणभरके लिये भी पृथक् नहीं रहने देता—

प्रभुसे प्यारा है न्यारा है जैसा जो कुछ भी सम्बन्ध।
काट दिये हैं उसने मेरे, यहाँ-वहाँके सारे बन्ध॥
रहते मेरे साथ निरन्तर, प्रभु क्षण दूर नहीं होते।
अनुभव सदा कराते अपना हर स्थितिमें जगते-सोते॥
रहूँ कहीं भी, कैसे भी, वे रहते नित्य पास मेरे।
रहते नित भीतर-बाहरसे चारों ओर मुझे घेरे॥
वे मेरे कैसे अपने हैं, इसे बताऊँ मैं कैसे।
अनुभव होता है, पर नहीं बता सकता गूँगा जैसे॥

'**मूकास्वादनवत्।**' उनकी अनुभूतिका वर्णन नहीं किया जा सकता। पर निश्चय ही वे सदा-सर्वदा साथ हैं, इसपर विश्वास करो तथा अनुभव भी करो। वे अपने-आप ही अनुभव भी कराते रहते हैं।

× × ×

यदि तुम सर्वथा समर्पित हो चुके हो, तो फिर अपनी चिन्ता क्यों करते हो? तुम्हारा अपनापन तो सारा भगवान्‌की वस्तु बन चुका है। तुम्हें राग-विरागसे क्या मतलब? तुम अपनी जगह—अपनेको भगवान्‌के हाथका एकमात्र खिलौना समझो। वे अपनी इच्छानुसार कुछ भी करें, तुम अपना अधिकार क्यों मानते हो? न तो तुम्हें अब अपने लिये चिन्ता-शोक करनेका अधिकार है, न संसारकी किसी परिस्थितिको लेकर हर्ष और उल्लास करनेका। तुम तो निश्चिन्त रहकर परमानन्दस्वरूप प्रभुका अनवरत चिन्तन करते रहो। चिन्ता करनी होगी तो वे आप करेंगे। संसारकी कुछ भी स्थिति रहे।

तुम्हारे पाप तो उसी क्षण नष्ट हो गये थे, जिस क्षण तुमने अपनेको उनके चरणोंमें समर्पण कर दिया था। अब वे चाहे तुम्हारी खूब बड़ाई करें या तुम्हें खूब कोसें-फटकारें—अपमान करें। तुमको न अपनी बड़ाई माननी है, न फटकार-अपमान। वे अपनी ही बड़ाई करते हैं और अपनेको ही कोसते-फटकारते हैं। तुम्हें न तो बड़ाई सुनकर फूलना चाहिये, न अपनी बड़ाई मानकर संकोच करना चाहिये। इसी प्रकार न तो अपमान-निन्दासे दुःखी होना चाहिये और न अपनी निन्दा मानकर क्षोभ ही करना चाहिये।

तुम्हारी बड़ाई कौन करता है? वे तो अपनी वस्तुको बढ़िया मानकर, अपनी वस्तुपर रीझकर, अपनी वस्तुसे आप सुखी होकर, अपनी वस्तुके गुणगान करनेके बहाने प्रकारान्तरसे अपना ही गुणगान करते हैं। वे अपनेसे तुमको पृथक् मानते ही नहीं। तुम्हें अपनेमें मिलाकर अथवा तुममें स्वयं मिलकर वे अपने-आपमें ही अपने-आप खेल करते हैं। तुम एक खिलौना हो, पर वह खिलौना भी वे आप ही बने हैं। अतएव तुम सदा ही मौजमें रहो। जगत्‌का कोई रूप सामने आवे, कैसी भी परिस्थिति आवे, तुम यही समझो—'वे तुम्हारे हैं—तुम उनके हो। न तुम्हारा अन्य कोई है, न तुम अन्य किसीके हो।' फिर चिन्ता, भय, मान, मद, विषादको स्थान ही कहाँ है? तुम्हारे

लिये तो दु:ख, भय, शोक नामकी कोई वस्तु ही नहीं रह गयी है, अधिक क्या कहा जाय?

× × ×

इससे अधिक जाननेकी तुम्हें आवश्यकता ही नहीं है। तुम तो बस, इतना ही मानो-जानो कि 'भगवान् मेरे हैं, मुझे बड़े ही प्रिय लगते हैं और मैं उनका हूँ' फिर जब वे जनाना चाहेंगे, जना देंगे। हमें उनके ज्ञानसे मतलब नहीं, हमें तो उनसे तथा उनके प्रेमसे मतलब है। उनको स्वयं गरज हो, तब वे अपना पूरा ज्ञान दें। ज्ञान होनेपर भी यदि प्रेम कम हो जाय तो वह ज्ञान भी नहीं चाहिये। वे चाहे कोई, कुछ भी हों, 'हमारे अपने हैं, पूरे अपने हैं, सदा अपने हैं, अत्यन्त मधुर प्रियतम हैं, सदा पास रहते हैं, सदा रसदान करते रहते हैं, उनपर हमारा सम्पूर्ण अधिकार है।' बस, यह चीज सदा बनी रहनी चाहिये।

× × ×

किसी भी वातावरणमें रहो, वे तुम्हें नित्य अपनाये हुए हैं। तुम तो केवल उनके नामका जप करते रहो। श्रीराधामाधव तुम्हारे हृदयमें ही बसे हैं। स्मृति और उत्कण्ठा उत्तरोत्तर बढ़ाते रहो। वे स्वयं ही तुम्हें सारे विघ्नोंसे बचायेंगे।

वस्तुत: तो तुम परम सुखी तभी होओगे—जब एकमात्र परम श्रेष्ठ श्रीभगवान्‌का ही अनन्य चिन्तन होगा। जगत्‌का यह रूप और इसके व्यवहार सभी मनसे सर्वथा निकल जायँगे। समस्त हर्ष, द्वेष, शोक, आकांक्षाका नाश हो जायगा। अत: बस, कोई भी दूसरा चिन्तन न करके भगवान्‌का ही मधुर-मनोहर चिन्तन करनेकी चेष्टा करो।

× × ×

जो अपनेमें दोष देखता है, जिसको अपनेमें गुणोंका अभाव दीखता है, जो सदा अपनेको लेनेवाला ही मानता है, देनेकी कोई वस्तु या योग्यता ही नहीं मानता, वही तो वास्तवमें गुण-शील-सौजन्य-समन्वित उदार है। पवित्र प्रेमराज्यमें अपनेमें सर्वथा-सर्वदा दैन्य तथा दोषोंके ही दर्शन होते हैं और भगवान्‌में सदा गुणोंके तथा अमित उदारताके।

× × ×

जगत्के विनाशी, क्षणस्थायी सम्बन्धको यथार्थ सम्बन्ध समझकर सुखी होना मूर्खता नहीं तो क्या है? ऐसे सम्बन्धको लेकर ममत्व करना और फिर रोना-धोना मूर्खता ही तो है। इसमें जो नित्य है, सत्य है, जिससे कभी विछोह नहीं होता, जो सदा साथ ही रहता है और रहेगा ......उसीसे प्रेम करना चाहिये। वह है—'श्रीकृष्ण'। उसीके अनन्त नाम हैं। है वह एक ही। वही हमारा सब अवस्थाओंका और सब समयका मित्र है। वह नित्य सुहृद् है, नित्य सुन्दर है, नित्य मधुर है, वह सदाका साथी है, वह हमारे प्राणोंका प्राण है, आत्माका आत्मा है। इस श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य किसीसे भी प्रेम करोगे, उसीमें धोखा होगा, जिसको चाहोगे, वही नष्ट होगा। न मालूम हमने कितनी योनियोंमें सुखके कितने संसार रचे हैं। वहाँ भी हमारे सगे-सम्बन्धी थे। पर हम सबको धोखा दे आये, आज उनकी तनिक भी चिन्ता हमें नहीं है। वे हमसे प्रेम करते थे, परंतु हमसे उन्होंने क्या पाया? बस, यही बात है। इसलिये एकमात्र श्रीकृष्णको ही अपना समझो, उन्हींसे प्रेम करो! सबमें उन्हींको देखकर फिर सबसे प्रेम करो। किसीमें खास ममत्व नहीं करना चाहिये। जीवन-मृत्यु तो उनका......श्रीकृष्णका......खेल है। सबमें, सब समय, सब ओरसे उन्हींको देखो, उन्हींको पकड़ लो, तभी जीवन सार्थक होगा, तभी सुखके—सच्चे सुखके, परमानन्दके यथार्थ दर्शन होंगे।

× × ×

मन निरन्तर भगवान्की स्मृतिमें ही लगा रहे। दूसरेका चिन्तन हो ही नहीं। समर्पण पूर्ण होना चाहिये। जिस मनमें भगवान् बस गये, उसमें कभी, किसी भी हालतमें दूसरेको स्थान नहीं मिलना चाहिये। गोपियोंने तो उद्धवजीसे कहा था—परमात्माके ध्यानके लिये भी मनमें स्थान नहीं रहा। ***'नाहिन रह्यो हिय महँ ठौर।'*** इसी प्रकार दिन-रात स्वप्न-जागरणमें सदा-सर्वदा एकमात्र प्रभु ही चित्तमें रहें, प्रभुमें ही चित्त रहे। प्रभुका चित्त ही अपना चित्त बना रहे। बस!

× × ×

जहाँतक हो सके, राग-द्वेषको छोड़कर स्वार्थकी परवा न करके सबके हितकी उदार-दृष्टिसे जो कुछ हमारी बुद्धिमें आवे, भगवान् जैसी भी प्रेरणा करें, तदनुसार हमें उचित चेष्टा करते रहना चाहिये। फिर भगवान्के विधानसे जो कुछ हो, वही ठीक और यथार्थ है। उसीमें आनन्द भी है।

असलमें संसारका संयोग-वियोग, सफलता-विफलता, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु आदि हमारे मनकी क्षुद्र सीमामें ही व्यक्त होते हैं। अनन्त महासागरके वक्षःस्थलपर क्रीडा करनेवाली असंख्य तरंगोंके समान विश्वमें भगवान्की यह लीला अनवरत चल रही है। इस लीलाको न समझनेके कारण ही ये सब हमें सुख-दुःख देनेवाले होते हैं। यह हमारे ही विचारोंकी सृष्टि है। उस महान् अनन्तकी ओर देखनेसे तो इन लहरियोंमें अनन्त, अपार, एकरस आनन्दराशिके अतिरिक्त और कुछ भी नजर नहीं आता। अतएव चेष्टा करनी चाहिये कि हमारी आन्तरिक दृष्टि नित्य-निरन्तर अनन्तकी ओर ही लगी रहे। व्यावहारिक दृष्टिसे तरंगोंके साथ हम भी यथायोग्य तरंगित होते रहें। इन बाह्य तरंगोंका संग भी हमें सतत उस अनन्तकी अपार महिमा बताकर महान् आनन्दका अनुभव करानेवाला ही हो। किसी भी तरंगका आघात हमारे अंदर आनन्दकी ही अनुपम और ललित लहरी उत्पन्न करता रहे और सारी लहरियोंको लेकर हम उस अनन्त आनन्दसागरमें निमग्न हो जायँ।

× × ×

पुरुष हो या स्त्री—मनुष्य-जीवनका प्रधान उद्देश्य—एकमात्र उद्देश्य है—'भगवान्को अथवा उनके अनन्य प्रेमको प्राप्त करना एवं कर्मबन्धनोंसे सदाके लिये छूट जाना।' जो मनुष्य अपने इस उद्देश्यकी सिद्धिमें लगा रहता है और उद्देश्यको प्राप्त कर लेता है, उसीका जीवन सार्थक है, वही बुद्धिमान् है।

वस्तुतः इस मानव-शरीरको पानेका फल विषय-भोग नहीं है। जो

लोग विषय-भोगमें मन लगाते हैं, वे अमृत बदलकर जहर लेते हैं। इसीलिये बुद्धिमान् पुरुष विषयोंकी आसक्तिका त्याग करते हैं और इसीलिये परमार्थ-मार्गके पथिकगण अतुल सम्पत्तिका त्याग करके संन्यास-ग्रहण किया करते हैं। यदि वे विषय हमसे छूट जायँ तो सचमुच यह ईश्वरका वरदान है, उनका कोप नहीं।

‘कल्याण’ में भूत-प्रेत-चर्चा क्यों?—प्रेतयोनि कभी न मिले इसलिये!

एक सज्जन लिखते हैं—‘कल्याण’ तो परमार्थ-पथपर ले जानेवाला आध्यात्मिक पत्र है। इसमें भूत-प्रेतोंकी चर्चा नहीं होनी चाहिये और न प्रेतावेश या प्रेतोंके उपद्रव आदिकी घटनाएँ ही छपनी चाहिये। पत्र-लेखक महोदय ‘कल्याण’ के प्रेमी हैं और उन्होंने जिस दृष्टिकोणसे पत्र लिखा है, वह सर्वथा आदरणीय है। ‘कल्याण’ उनका तथा उन्हीं-जैसे प्रेमी बन्धुओंका नित्य कृतज्ञ है। वास्तवमें ‘कल्याण’ का उद्देश्य भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करना ही है। प्रेत-चर्चा करना या प्रेतोंमें आस्था उत्पन्न करना ‘कल्याण’ का कदापि लक्ष्य नहीं है। न ‘कल्याण’ प्रेत-पूजाका प्रचार चाहता है। ‘कल्याण’ वर्ष ४३ के विशेषांकमें प्रेतोंके सम्बन्धमें आयी हुई घटनाओंमेंसे बहुत थोड़ी-सी ही दी गयी हैं। ये भी इसीलिये दी गयी हैं कि ‘प्रेतयोनि सत्य तथ्य है; कल्पना या बहममात्र नहीं है।’ यह सर्वथा सत्य है कि प्रेतावेशके नामपर ढोंग, ठगी, बदमाशी बहुत चलती है और उससे सावधान ही रहना चाहिये। कहीं जान-बूझकर धोखा नहीं भी दिया जाता तो वहाँ मानस-दुर्बलता या हिस्टीरिया आदिकी बीमारीको प्रेतबाधा मान लिया जाता है, तथापि तथ्य तो है ही और संसारके मनुष्य त्रिगुणमयी सृष्टिके हैं। उनमें तमोगुणी भी हैं ही। ऐसे कर्म भी प्रायः बहुत लोगोंसे हो जाते हैं, जिनके फलस्वरूप प्रेतयोनि भोगनी पड़ती है। प्रेतयोनि अत्यन्त यातनामयी है। इसमें मनुष्योंको न जाना पड़े और वे धर्ममार्गपर चलें तथा फलतः अध्यात्म-पथारूढ़ होकर भगवान्‌को प्राप्त करें, इसी उद्देश्यसे प्रेतचर्चा भी आवश्यक समझकर की जाती है। प्रेतयोनिके सम्बन्धमें संक्षेपमें नीचे लिखी बातें जाननेकी हैं—

प्रेतयोनि सत्य है

प्रेतयोनि होती है। वह वायुप्रधान शरीर होता है। प्रेत सभी एक-सी शक्ति, बुद्धिवाले नहीं होते। यहाँकी भाँति विभिन्न जातियोंके प्रेत,

कम-ज्यादा शक्ति-सामर्थ्यवाले, अच्छे-बुरे स्वभाववाले, शान्त-अशान्त प्रकृतिवाले, तमोगुणप्रधान होनेपर भी सत्त्व, रज या तमकी न्यूनाधिकतावाले होते हैं और उसीके अनुसार उनके आचरण होते हैं। इस लोकके-जैसी ही उनकी आकृति-प्रकृति होती है। यहाँके अनुसार ही उनमें राग-द्वेष, अपना-पराया, समता-विषमता आदि होते हैं और वे तदनुसार ही शक्तिभर भला-बुरा करना चाहते हैं। शक्ति होती है तो शक्तिके अनुसार हित-अहित करते भी हैं। सत्-स्वभावके प्रेत भी होते हैं, परंतु अधिकांशमें वे पापात्मा, द्वेष-हिंसा-परायण ही होते हैं। वे प्रायः अनवरत अत्यन्त अशान्त तथा दुःखी रहते हैं। प्रेत नीचे लिखे कारणोंसे अधिकतर होते हैं।

प्रेतयोनि क्यों मिलती है?

१-संसारमें किसी प्राणी-पदार्थके प्रति प्रबल द्वेष या वैर होनेपर या अत्यन्त आसक्ति या ममता होनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है। किसीसे द्वेष रखकर मरनेवालेको बड़ी पीड़ादायक प्रेतयोनि मिलती है। (अतः किसीसे द्वेष न रखे। किसीका अपराध हो गया हो तो मृत्युसे पहले उससे क्षमा माँग ले। अपने मनसे द्वेष निकाल दे।)

२-जिनका अन्त्येष्टि-संस्कार, शास्त्रोक्त पिण्डदान, तिलांजलि, श्राद्धादि शास्त्रविधिसे नहीं होते, उनको प्रेतत्वकी प्राप्ति होती या उनके प्रेतयोनिमें निवासकी अवधि बढ़ जाती है।

३-जो यहाँ भूत-प्रेतोंकी पूजा करते हैं, तामसी साधना करते हैं, तामस खान-पान तथा आचार-व्यवहार करते हैं, वे प्रायः प्रेत होते हैं।

४-शराबखोर, चोरी-डकैती करनेवाले, हत्याकारी, व्यभिचारी, शास्त्रविरुद्ध आचरण करनेवाले तथा अधर्मके प्रचारक प्रेत होते हैं।

५-जो आत्महत्या करते हैं, वे प्रेत होते हैं।

६-जिसकी किसीके द्वारा हत्या कर दी गयी हो, वह जीव भी मारनेवालेसे बदला लेनेकी प्रबल भावनासे प्रेत होता है।

इसके सिवा और भी कई कारण प्रेतत्व-प्राप्तिके होते हैं। इन सभी

कारणोंसे बचना चाहिये तथा घरवालोंको बचानेकी चेष्टा करनी चाहिये। प्रेतत्वसे बचा देना या प्रेतयोनिसे छुड़ा देनेका प्रयत्न करना घरवालोंका, मित्र-बन्धुओंका कर्तव्य तो है ही, महान् पुण्यका कार्य भी है।

प्रेतयोनिसे छूटनेके उपाय

प्रेतत्व-निवारणके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि विधि श्रद्धाके साथ अवश्य करने चाहिये। जो श्राद्धके अधिकारी हैं, वे ही सम्पत्तिके भी उत्तराधिकारी हैं। पुत्र इसलिये उत्तराधिकारी नहीं कि वह पुत्र है, इसलिये है कि वह पिण्डदान, श्राद्ध करके अपने पिता-पितामह आदिका उद्धार करता है।

प्रेतत्व-निवारणके लिये श्रीमद्भागवत-सप्ताह, विष्णुसहस्रनामके पाठ, गायत्री-पुरश्चरण, भगवन्नाम-कीर्तन, द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रका जप, गयाश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध आदि परमावश्यक हैं। यथायोग्य इनका प्रयोग करना चाहिये।

कौन प्रेत नहीं होते?

प्रेतत्वसे बचनेके लिये सदाचारी, सत्कर्मपरायण, शास्त्रविधिको जाननेवाले, माता-पिता-गुरुजनोंके पूजक, प्राणिमात्रका हित चाहनेवाले तथा भगवान्‌का भजन करनेवाले बनना चाहिये। निरन्तर भगवान्‌के नाम-जप तथा भगवत्स्मरणका अभ्यास करना चाहिये। भक्त कभी प्रेत नहीं होता।

प्रेतका आवेश कब, कहाँ होता है? और उससे बचनेके उपाय

प्रेतोंका आवेश होता है—यह सत्य है, परंतु वे प्रायः उन्हींमें आविष्ट होते हैं या उन्हींको पीड़ा दे सकते हैं, जो अपवित्र, असदाचारी हों। नियमित संध्या, अग्निहोत्र तथा गायत्री-जप करनेवाले, पवित्र आचरण करने तथा पवित्र खान-पानवालोंको प्रेत पीड़ित नहीं कर सकते। प्रेतयोनिमें जीव अतृप्त वासनाओंसे जलता रहता है। अतएव—

१-अशुद्ध स्थानमें, खुली जगह मिठाई खाते समय, एकान्तके अन्धकारमें, स्त्रियोंके नग्न स्नान करनेकी स्थितिमें, तालाब आदिके किनारे, पीपल, बड़, ताड़-खजूर आदिके नीचे, सुनसान जगहमें, पेड़के नीचे, श्मशानभूमिमें, समाधि या कब्रके पास, कूएँ-बावड़ीके तटपर और चौराहेपर मल-मूत्रका त्याग करनेपर वहाँके निवासी प्रेतोंका आवेश हो सकता है। इनसे बचना चाहिये।

२-जो मकान, पुराने दुर्ग-किले—बहुत दिनोंसे निर्जन पड़े हैं, उनमें रात्रि या दिनको भी सहसा नहीं जाना चाहिये और न उनमें रात्रि-निवास करना चाहिये। उनमें रहना हो तो पहले हवन-पूजन, श्रीमद्भागवत-सप्ताह, रामायण-सुन्दरकाण्ड-पाठ कराकर तब रहना चाहिये।

३-जिन स्थानोंमें जानेको मना किया गया है, उन स्थानोंपर जाना ही पड़े तो भगवन्नामका जप करते हुए, गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए अथवा जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करते या कोई भगवान्‌की स्तुतिको बोलते हुए जाना चाहिये।

४-कभी कोई अद्‌भुत आकृति दीख ही जाय या मनुष्यके रूपमें ही कोई दीखे और उसके प्रेत होनेकी सम्भावना हो तो भगवन्नाम या गायत्री-मन्त्रका जप करने लगना चाहिये। उससे स्वयं नहीं बोलना चाहिये। वह बोले तो नम्रतासे उचित उत्तर देना चाहिये। अपने पास कोई वस्तु हो और वह माँगे तो उसे दे देनी चाहिये।

५-किसी भी दशामें डरना नहीं चाहिये। डर लगता ही हो तो उच्चस्वरसे भगवन्नाम लीजिये। उन समस्त भयहारी सर्वसमर्थ प्रभुको पुकारिये। भय स्वयं भाग जायगा, लेकिन घबराकर भागिये मत।

६-कोई प्रेत, देवता आदि आपसे कुछ अनुचित करनेको कहे, कोई अपवित्र वस्तु दे या माँगे, कोई ऐसा धन या पदार्थ दे जो आपका नहीं है तो नम्रतापूर्वक, किंतु दृढ़तासे अस्वीकार कर दीजिये। उसकी बात स्वीकार करनेमें हानि होनेकी सम्भावना है। वह धमकावे तो भी अस्वीकार करनेमें ही हित है।

७-जो प्रेत-पूजक, तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका करनेवाले लोग हैं,

किसी बाधाके निवारणके लिये इनकी सहायता लेनी आवश्यक हो तो लेनी चाहिये, किंतु चमत्कार देखनेके कुतूहलवश अथवा कुछ सीखने, कुछ लाभ उठानेकी आशासे इनसे परिचय मत बढ़ाइये। इनसे अपरिचितोंकी अपेक्षा प्राय: परिचितोंकी हानि अधिक हुआ करती है।

८-अशुद्धावस्थामें, खाकर, दूध पीकर या मिठाई खाकर बिना कुल्ला किये कहीं मत जाइये। अपने शरीर तथा वस्त्रको, अपने रहनेके स्थानको शुद्ध रखिये।

९-प्रेतसिद्ध करके उससे कुछ भी काम लेनेकी कभी भी न इच्छा कीजिये, न वैसी क्रिया ही कीजिये।

१०-जो भगवान्‌की शरण ले लेता है, भगवान्‌का भजन करता है, उसे किसीका भय नहीं है। देवता भी उसका अपकार नहीं कर सकते। अत: भगवान्‌की शरण लेकर, उनका स्मरण, उनका नाम-जप-कीर्तन करनेमें लगे रहना सर्वदा-सर्वत्र-सर्वथा मनुष्यको निर्भय कर देता है।

किसीको प्रेतबाधा हो, प्रेतावेश होता हो तो आवेशके समय पहले उससे नम्रताके साथ पूछिये कि 'वे कौन हैं, क्या चाहते हैं?' वे बता दें तो उनकी उचित माँग पूरी कर दीजिये। अन्न, वस्त्र, जलदान तो बिना माँगे ही मृतात्माओंके लिये करना चाहिये, माँगनेपर तो तुरंत कर देना चाहिये। अनुचित पापकी माँग हो तो न मानिये। प्रेतबाधा-निवारणके लिये नीचे लिखे उपाय करने चाहिये, इनसे लाभ होता देखा गया है।

जिस कमरे या मकानमें वह व्यक्ति रहता हो, जिसको प्रेत-बाधा हो, उस कमरे या मकानमें अखण्ड भगवन्नाम-कीर्तन किया जाय।

गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल (मँजे हुए शुद्ध बर्तनमें शुद्ध कूपजल या गंगाजल डालकर ११ बार गायत्री-मन्त्र बोलते हुए उसमें दाहिने हाथकी तर्जनी अँगुली फिराकर) उस मकानमें या कमरेमें सर्वत्र छिड़क दें। थोड़ा-थोड़ा प्रात:-संध्या दोनों समय उस व्यक्तिको पिला दें और उसके बिछौनोंपर छिड़क दें। उसके कानमें गायत्री-

मन्त्र सुनावें। गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित गंगाजल नहाते समय उसके मस्तकपर थोड़ा-सा डाल दें।

श्रीमद्भगवद्गीताका यह श्लोक उसको बार-बार सुनावें और कई प्लेटोंपर लिखकर दीवालपर टाँग दें—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥

(११। ३६)

इसके द्वारा (उपर्युक्त रीतिसे) अभिमन्त्रित जल भी रोगीको पिलाना चाहिये। नीचे लिखा यन्त्र मंगलवारके दिन भोजपत्रपर लाल चन्दनसे लिखकर और उसके नीचे उपर्युक्त गीताका श्लोक लिखकर रोगीके (पुरुष हो तो दाहिने, स्त्री हो तो बायें) हाथमें ताँबेके ताबीजमें डालकर, धूप देकर बाँध दें और प्रतिदिन गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल उसपर छिड़कते और उसे पिलाते रहें।

२४	३१	२	७
६	३	२८	२७
३०	२५	८	१
४	५	२६	२९

ऐसे और भी बहुत-से मन्त्र-यन्त्र भी हैं, जो प्रेतपीड़ा-निवारणके सफल साधन हैं। परंतु इनके जानकार बहुत कम मिलते हैं और आजकल तो अधिकांश स्थानोंपर ठगी चलती है। कुछ वर्ष पहले हमारे एक मित्र प्रेतबाधासे पीड़ित थे। वे इन मन्त्र-तन्त्रवालोंसे बुरी तरह ठगे गये थे। अतएव मन्त्र-यन्त्रका प्रयोग वे ही लोग कर सकते हैं, जो इस विषयमें पूरा ज्ञान रखते हों तथा जो सर्वथा निःस्पृह हों। व्यवसायियों तथा विज्ञापनबाजोंसे सावधान रहना चाहिये।

आयुर्वेदमें भी प्रेतबाधाकी चिकित्सा बतलायी गयी है। उसमें ऐसे विशेष धूपों तथा अर्घ्योंका उल्लेख है, जिनसे प्रेतपीड़ा मिट जाती है। उनका उपयोग हानिकर नहीं है, परंतु उसमें भी जानकारीकी जरूरत तो है ही। ऐसे कई 'देवस्थान' भी माने जाते हैं, जहाँ जानेपर प्रेतबाधा दूर होती है, पर इनमें भी ठगी न चलती हो सो बात नहीं है। अतः कौन-सा स्थान, कितने अंशमें ठीक है, यह कहना बहुत कठिन है।

महामृत्युंजयके जाप, श्रीहनुमानचालीसा तथा बजरंगबाणके पाठसे भी प्रेतबाधा दूर होती है।

प्रेतोपासना या प्रेतसेवा कभी न करे। प्रेतोंसे लाभ उठानेका कभी प्रयत्न न करे। यह सब तामसी है। इनका फल परमार्थपथसे च्युति और प्रेतत्वकी या नरकोंकी प्राप्ति ही है।

वर्तमान विश्व-संकटके निवारणके लिये प्रार्थना और भगवन्नामका आश्रय आवश्यक

सारा जगत् आज अपने ही निर्माण किये साधनोंसे संत्रस्त और भयग्रस्त है तथा यह भय तबतक बढ़ता ही रहेगा एवं जगत्‌की क्रमशः अधःपातकी ओर अबाध गति बनी ही रहेगी, जबतक मानव अपने जीवनके परम लक्ष्य परमात्माको भूलकर भोगोंसे सुखकी आशा करता रहेगा। 'भगवान्' की ओर जीवनकी गति होनेपर जीवनमें परम साधन होता है—'त्याग', जो सर्वत्र 'प्रेम' तथा परिणामतः 'आनन्द' का विस्तार करता है। 'भोग' की ओर गति होनेपर उसका परम साधन होता है—'भोग-अर्जन और संग्रह', जो सर्वत्र द्वेष तथा परिणामतः दुःखका विस्तार करता है। लक्ष्यके अनुसार ही साधनका प्रयोग होता है। बिजलीके द्वारा हम चाहे सर्वत्र प्रकाश और सुखके साधनोंका विस्तार कर दें अथवा आग लगाकर या झटके देकर सबके विनाशका विस्तार कर दें। पैरोंसे या किसी भी वाहनसे चलकर हम देवमन्दिरमें पहुँच जायँ या पाप-कुण्डमें! आज संसारमें बाह्य प्रकृतिके नये-नये आविष्कारोंका प्रकाश और विज्ञानका विकास हो रहा है और इसपर लोगोंको बड़ा गर्व है। प्रकृतिगत पदार्थोंका आविष्कार और विज्ञान बुरी चीज नहीं है। जीवनका लक्ष्य 'भगवान्' होनेपर ये सभी साधन भगवान्‌के मंगलमय पथके सहायक बन सकते हैं, परंतु 'भोग' लक्ष्य हो जानेपर यही सब विनाशके साधन बन जाते हैं। इसीसे बाह्य प्रकृतिपर अपनेको विजयी माननेवाला मानव आज अन्तःप्रकृतिकी सहायतासे वंचित हो वासनाका दास बन गया है और तिलोत्तमाके मोहमें ग्रस्त सुरापान-प्रमत्त सहोदर-भाई सुन्द-उपसुन्दके परस्पर विनाश करनेकी भाँति एक-दूसरेका विनाश करनेमें प्रवृत्त है। आजके विश्वव्यापी अन्तर्द्वेष और सर्व-विनाशकारी युद्धोंकी तैयारीका यही हेतु है। भोगकी वासनाने 'सर्वभूतात्म-भावना' को और 'सबमें भगवान् हैं'—इस सत्यको

भुलाकर मनुष्यके स्वार्थको इतनी संकुचित सीमामें लाकर खड़ा कर दिया है कि जिससे एक ही सिद्धान्तके माननेवाले और अपनेको विश्वका परम हितकारी समझनेवाले लोग भी व्यक्तिगत स्वार्थवश एक-दूसरेके पतनमें सचेष्ट हैं और इसीमें अपनेको सफलजीवन मान रहे हैं। साम्यवादी रूस और चीनका विवाद एक ही रूपमें क्रुश्चेवके द्वारा मरे हुए स्टैलिनका तिरस्कार और सम्प्रति उसी मतके एक दलके द्वारा क्रुश्चेवकी पदच्युति तथा एक ही धर्म और मतके अनुयायी लोगोंमें एक ही देशके विभिन्न राजनीतिक दलोंद्वारा एक-दूसरेके अधिकारोंकी छीना-झपटी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। भोगवासनाने मनुष्यको इतना असहिष्णु और असंतोषपूर्ण बना दिया है कि वह रात-दिन अशान्तिकी आगमें जलता रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—उन्नतिके शिखरपर समारूढ़ माना जानेवाला अमेरिका देश, जहाँ दिनभरके २४ घंटोंमें लगभग ४१ आत्महत्याएँ और लगभग ७०० से अधिक मनुष्योंपर पागलपनका आक्रमण होता है।

भारतवर्षकी संस्कृतिमें 'आत्म-साक्षात्कार' या 'भगवान्‌की प्राप्ति' जीवनका परम लक्ष्य माना गया है और 'गर्भाधान' से लेकर 'अन्त्येष्टि'-तकके सारे संस्कार और गुरुकुल-प्रवेशसे लेकर मृत्युतकके जीवनकी सारी चेष्टाएँ इसी लक्ष्यकी पूर्तिके लिये की जाती रही हैं। पर आज भारतवर्ष भी अपने इस महान् लक्ष्यसे च्युत होता जा रहा है और इसीका परिणाम है—अशान्ति, दुःख और भाँति-भाँतिकी असंख्य नयी-नयी विपत्तियाँ, जो मिटानेकी चेष्टामें उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। एवं सबसे अधिक परितापका विषय तो यह है कि इस 'अधःपात' को ही 'उत्थान', 'अवनति' को 'उन्नति', 'विपरीत गति' को ही 'प्रगति' और 'विनाश' को ही 'विकास' माना जा रहा है और यह स्वाभाविक है कि जब भोग-वासनाओंसे अभिभूत होकर मनुष्य तमोगुणसे आक्रान्त हो जाता है, तब उसकी बुद्धिके सारे निर्णय विपरीत ही हुआ करते हैं। तमोऽभिभूत बुद्धिका लक्षण बताते हुए भगवान् कहते हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८। ३२)

बुद्धि जब तमोगुणसे आवृत हो जाती है, तब वह धर्मको अधर्म, पुण्यको पाप, कल्याणको अकल्याण मान लेती है और सभी वस्तुओंमें विपरीत निर्णय करती है। और यह निश्चित है कि तमोगुणी वृत्तिमें स्थित मनुष्योंका पतन होता है—

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १४। १८)

इसीसे आज जो अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका, लौकिक परम अभ्युदय और मानव-जीवनके परम लक्ष्य निःश्रेयसकी प्राप्तिका, विश्वकल्याण और विश्व-शान्तिका एकमात्र साधन भगवदाश्रय है, उस परम साधनसे मुँह मोड़कर विकासके नामपर केवल भौतिक साधनोंकी सेवामें देश संलग्न हो रहा है। परिणाम तो प्रत्यक्ष ही है। अतः यदि भारतवर्षमें और अखिल विश्वमें यथार्थ सुख-शान्ति-वैभव-कल्याण आदिकी प्रतिष्ठा देखनी है, तो इस निरे भौतिक लक्ष्यका परित्याग करके समस्त भौतिक साधनोंको भगवान्‌की सेवामें लगा देना होगा और भगवान्‌का आश्रय करके भगवन्नाम और प्रार्थनाका सहारा लेना पड़ेगा।

आज देशमें अशान्ति है, दुर्भिक्ष है, पड़ोसी मित्र शत्रु बन रहे हैं, सर्वत्र आतंक छाया है, एक-दूसरेपर संदेहकी वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, विपत्तिके बादल मँडरा रहे हैं और कहीं-कहीं बरसने भी लगे हैं—इन सब आगत-अनागत उत्पात-उपद्रवसे बचना है तो उसका परम साधन है—'भगवान्‌का आश्रय करके भगवन्नाम और प्रार्थनाका अवलम्बन करना।' साथ ही, भगवान्‌के ही विभिन्न स्वरूप देवताओंका, जो विभिन्न कार्योंकी सिद्धिके लिये प्रकट हैं, श्रद्धा-विधिपूर्वक आराधना करना। विगत अष्टग्रहीके समय भगवदाराधन और देवाराधनकी ओर बड़ी प्रवृत्ति हुई और उसके फलस्वरूप

अष्टग्रहीकी उस समयकी विनाशलीला रुक गयी। अविश्वासियोंने अवश्य यह माना कि 'ये सब साधन व्यर्थ ही किये गये। अष्टग्रहीसे कोई कुपरिणाम होनेवाला ही नहीं था। सब व्यर्थकी बातें थीं।' पर ऐसा समझना उन लोगोंकी यथार्थतः बेसमझी ही है। किसी अमोघ साधनसे संकटका टल जाना दूसरी बात है और संकटका न आना दूसरी बात है। चीनके आक्रमणके समय भी प्रार्थना तथा भगवदाराधन-देवाराधनकी ओर कुछ रुचि आरम्भ हुई थी, पर इस समय तो इस ओर प्रायः उदासीनता-सी देखी जाती है, जो बेसमझी तो है ही, महान् विपत्तिकी भूमिका भी है। अतएव विश्वके समस्त कल्याणकामियोंसे, खास करके पवित्र भूमि भारतके निवासियोंसे, उनमें भी कल्याणके पाठक-पाठिकाओंसे विशेष निवेदन है कि वे निम्नलिखित साधनोंका—अनुष्ठानोंका यथासाध्य, यथारुचि, यथाधिकार आयोजन करें-करायें—

(१) हिंदू (वैदिक धर्मावलम्बी सनातनी, आर्यसमाजी तथा जैन, बौद्ध, सिक्ख एवं अन्यान्य समस्त हिंदूधर्म-सम्प्रदायी), मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी अपने-अपने धर्मानुसार निर्दोष भगवत्-प्रार्थना, नाम-जप आदि करें।

(२) वेदाध्ययन, वेद-परायण, धर्मग्रन्थ-पाठ, विष्णुरुद्रयाग, गायत्री-पुरश्चरण, रुद्राभिषेक, रुद्रीपाठ, महामृत्युंजय-जप, पुराणपाठ आदिके अधिक-से-अधिक आयोजन हों।

(३) माता भगवतीकी प्रसन्नताके लिये नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्र-चण्डी, लक्षचण्डी आदि अनुष्ठान हों। व्यक्तिगतरूपसे लोग अपने-अपने सुविधानुसार पाठ करें। नवार्णमन्त्रका जप करें, दुर्गानाम-जप करें-करायें। सम्पुटके मन्त्र निम्नलिखित हैं—

(१) देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥

(२) शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(३) करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः॥

(४) विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥

(५) सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(४) श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायण अधिक-से-अधिक किये-कराये जायँ। वाल्मीकिरामायणके नवाह्न-पारायण या सुन्दरकाण्डके पाठ किये-कराये जायँ। निम्नलिखित सम्पुट दिये जायँ तो अच्छा है—

श्रीमद्भागवतमें सम्पुट—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद् वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

वाल्मीकीय रामायणमें सम्पुट

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

(५) श्रीरामचरितमानसके मासिक, नवाह, अखण्ड या यथारुचि यथासाध्य जिनसे जितना हो सके, पाठ करें-करायें। सम्पुटकी चौपाइयाँ निम्नलिखित हैं—

१-राजिवनयन धरें धनु सायक । भगत बिपति भंजन सुखदायक ॥
२-जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
३-दीन दयाल बिरिदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥
४-दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामु राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
५-गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥

(६) अपनी रुचि तथा श्रद्धाके अनुसार श्रीशंकरजीके '**नमः शिवाय**', भगवान् विष्णुके '**हरिःशरणम्**' और श्रीगणेशजीके '**गं गणपतये नमः**' मन्त्रका जप करें-करायें। भगवन्नाम-कीर्तन अधिक-से-अधिक किया-कराया जाय।

(७) गौओंको चारा, घास, भूसा, दाना खिलाया जाय। गोवध-कानून सर्वथा बंद हो। गोचरभूमि सुरक्षित तो रहे ही और भी अधिक छोड़ी जाय। गोरक्षाकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

(८) गरीब, रोगी, दीन, बाढ़पीड़ित, विधवा स्त्री, अनाथ बालक, विद्यार्थी आदिकी सेवा-सहायता की जाय।

(९) जनतामें बढ़ती हुई मांसाहारकी प्रवृत्तिको छुड़ाया जाय। पशु-पक्षी-हिंसा-उद्योगों और नये-नये कसाईखानोंकी योजनाका तुरंत त्याग कर दिया जाय।

(१०) ३५ वें वर्षके १२ वें अंकमें प्रकाशित 'नारायण-कवच' का और शिवपुराणांकमें छपे 'अमोघ शिवकवच', 'श्रीसर्वेश्वरका शिव-कवच' और 'श्रीमहामृत्युंजय कवच', 'संकटनाशन विष्णुस्तोत्र' अथवा 'उपमन्युकृत शिवस्तोत्र' का पाठ यथारुचि संस्कृत जाननेवाले लोग स्वयं करें तथा करायें। ये सर्वोपद्रवनाशक एवं बहुत लाभप्रद हैं।